ॐ ह्रीं

हिन्दी कुलार्णव-तन्त्र

सम्पादक एवं हिन्दी-अनुवादक

'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल

प्रकाशक : परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
श्रीचण्डी-धाम, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

ह्रीं ॐ

हिन्दी

कुलार्णव-तन्त्र

आदि-सम्पादक एवं अनुवादक

प्रातः-स्मरणीय 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

★

सम्पादक

ऋतशील शर्मा

★

प्रकाशक

पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६ ☎ ९४५०२२२७६७

Website : www.paravani.org Email : chandi_dham@rediffmail.com

प्रकाशक
पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६ ☎ ९४५०२२२७६७

(हिन्दी)

कुलार्णव-तन्त्र

चौरासी लाख शरीरों में से मनुष्य शरीर ही ऐसा है,
जिसके द्वारा जीवों को तत्त्व का ज्ञान होता है।
अच्छे कर्मों के फल-स्वरूप वे मानव होकर जब ज्ञानी होते हैं,
तब मोक्ष को प्राप्त करते हैं और
मोक्ष का कारण हे महेश्वरि!
साक्षात् तत्त्व-ज्ञान है।
(पृष्ठ-१)

चतुर्थ संस्करण
फाल्गुन शुक्लाष्टमी, शोभन सं० २०६७ वि०
(१३ मार्च, २०११)
सर्वाधिकार सुरक्षित
परा-वाणी प्रेस
'श्रीचण्डी-धाम'
अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-राज (उ०प्र०)
फोनः ०५३२-२५०२७८३

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन (द्वितीय-तृतीय संस्करण में प्रकाशित) (सात)

१. पहला उल्लास (जीव की स्थिति) १

१. जीवों के मोक्ष का उपाय, २. शिव का स्वरूप, ३. जीव का लक्षण, ४. देह-धारियों की सामान्य अवस्था, ५. देह-धारियों के चतुर्विध शरीर, ६. मनुष्य-शरीर की श्रेष्ठता, ७. शरीर की रक्षा, ८. ब्रह्मा आदि की भी नश्वरता, ९. आयु-क्षय के कारण, १०. कृत कर्मों का फल अगले जन्म में, ११. अपने अपराध से जीव को दुःखादि, १२. निःसङ्ग को मुक्ति-लाभ, १३. संसार के दोष, १४. विवेक-ज्ञान के बिना शारीरिक कष्टादि द्वारा मुक्ति नहीं, १५. अकेले कर्म-काण्ड का दोष, १६. तत्त्व-ज्ञान ही मोक्ष का कारण, १७. परमार्थ-ज्ञान के बिना शास्त्रादि-पाठ से मुक्ति नहीं, १८. आत्मस्थ तत्त्व, १९. ज्ञान से ही मुक्ति, २०. गुरु-वाणी ही मुक्तिदा, २१. ज्ञान के दो प्रकार- १. आगम, २. विवेक, २२. इन्द्रिय-निग्रह और गुरु-कृपा बिना तत्त्व-ज्ञान नहीं।

२. दूसरा उल्लास (कुल-धर्म का माहात्म्य) ५

२३. कुल-धर्म और ऊर्ध्वाम्नाय, २४. कुलाचार की श्रेष्ठता, २५. भोग-योगात्मक 'कौल', २६. देवता भी कुल-धर्म-परायण, २७. पूर्व-जन्म के अभ्यास से कुल-धर्म का ज्ञान, २८. मन्त्र-जपादि से शुद्ध-चित्त को कुल-धर्म का ज्ञान, २९. कुल-धर्म का ज्ञान पाने के अन्य कारण, ३०. कुल-धर्म के ज्ञान के अधिकारी, ३१. समयाचारी को कुल-धर्म बताने का दोष, ३२. कुल धर्म की महिमा, ३३. कुल (शक्ति-देवी) उपासना से सद्गति, ३४. कुल-धर्म को न जाननेवाला सदा पशु के समान, ३५. कुल-धर्म के पालन करनेवाले ही मनुष्य, ३६. कुल को न जाननेवाला वेदज्ञ चाण्डाल से भी अधम, ३७. देवी-भक्त ही कुलज्ञ, ३८. छहों दर्शन मेरे अङ्ग-वेदात्मक शास्त्र कौलात्मक, ३९. प्रत्यक्ष फल देने से कुल-शास्त्र की प्रामाणिकता, ४०. संसार की रक्षा-हेतु कुल-धर्म की निन्दा, ४१. पापियों को कुल का ज्ञान नहीं, ४२. दुरात्माओं को भ्रमित करने हेतु पशु-शास्त्रों का प्रचार, ४३. कुल-धर्म से देवताओं को देवत्व-प्राप्ति, ४४. मिथ्या ज्ञानियों द्वारा कुल-धर्म की विडम्बना, ४५. वेदादि में वृथा-पान की निन्दा, ४६. द्विजातियों के लिए ग्यारह मद्य अग्राह्य, ४७. सुरा आदि के देखने आदि का प्रायश्चित, ४८. वृथा हिंसा करने में दोष, ४९. आठ प्रकार के घातक (पशु-हिंसक), ५०. तीन प्रकार के बध, ५१. विधि-पूर्वक ही पञ्च-मकार सेवनीय, ५२. कुल-धर्म के अनुकूल श्रुति के प्रमाण।

३. तीसरा उल्लास (ऊर्ध्वाम्नाय और प्रासाद-परा-मन्त्र की महिमा) ११

५३. ऊर्ध्वाम्नाय सम्बन्धी प्रश्न, ५४. ऊर्ध्वाम्नाय आदि की अति गोपनीयता, ५५. ऊर्ध्वाम्नाय-तत्त्व पूर्ण-ब्रह्मात्मक, ५६. पञ्च-मुखों से पञ्च-आम्नायों की उत्पत्ति, ५७. ऊर्ध्वाम्नाय की श्रेष्ठता, ५८. देवता शक्ति और शिव के अंश से सम्भूत, ५९. आम्नाय को जानने का फल, ६०. ऊर्ध्वाम्नाय शब्द का अर्थ, ६१. दृष्टान्त द्वारा ऊर्ध्वाम्नाय की श्रेष्ठता, ६२. ऊर्ध्वाम्नाय के ज्ञान का कारण, ६३. ऊर्ध्वाम्नाय गुरु-मुख से ही ज्ञेय, ६४. ऊर्ध्वाम्नाय-परायण की सर्व-जीवन्मुक्ति और कृतार्थता, ६५. ऊर्ध्वाम्नाय-परायण की प्रशंसा,

६६. आम्नायों के सृष्टि-रूपादि भेद, ६७. आम्नायों के सङ्केत-भेद, ६८. ऊर्ध्वाम्नाय में सङ्केतों का अभाव, ६९. शिव-शक्त्यात्मक प्रासाद-मन्त्र की महिमा, ७०. प्रासाद-मन्त्र में सारा जगत्, ७१. प्रासाद-मन्त्र से असङ्गत मन्त्र निष्फल, ७२. देव-मुनि आदि भी प्रासाद-मन्त्र के जप-कर्त्ता, ७३. परा-प्रासाद-मन्त्र के जप का फल, ७४. प्रासाद-मन्त्र का ज्ञाता चाण्डाल भी देव-स्थापना का अधिकारी, ७५. परा-प्रासाद-मन्त्र के ज्ञाता को शैवादि सभी मन्त्रों का ज्ञान, ७६. परा-प्रासाद-मन्त्र सब फलों का देनेवाला, ७७. शचीन्द्र आदि द्वन्द्व शिव-शक्त्यात्मक, ७८. परा-प्रासाद-मन्त्र सर्वात्मक, ७९. श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र की प्रशंसा, ८०. श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र की जप-विधि, ८१. श्रीपरा-प्रासाद-मन्त्र भुक्ति एवं मुक्ति-दायक।

४. चौथा उल्लास (प्रासाद-परा-मन्त्र एवं षोढा-न्यास) १६

८२. श्री प्रासाद-परा-मन्त्र का उद्धार, ८३. प्रासाद-मन्त्र की शब्द-व्याख्या, ८४. न्यास के पूर्व-कर्तव्य का निरूपण, ८५. श्री परा-प्रासाद-मन्त्र का ऋष्यादि-न्यास, ८६. महा-षोढा-न्यास, ८७. अर्द्ध-नारीश्वर का ध्यान, ८८. मुद्राओं का प्रदर्शन, ८९. श्रीगुरुदेव का ध्यान, ९०. महा-षोढा-न्यास का फल।

५. पाँचवाँ उल्लास (आधार, पात्र और कुल-द्रव्य) २५

९१. आधार-पात्रादि-सम्बन्धी प्रश्न, ९२. आधार की आवश्यकता, ९३. पात्र बनाने के पदार्थ, ९४. कामना-भेद से पात्र, ९५. ग्यारह मद्यों के नाम, ९६. बारहवें मद्य-'सुरा' के भेद एवं गुण, ९७. उत्तम मद्य के लक्षण, ९८. 'सुरा' में इच्छा आदि शक्तियाँ, ९९. 'सुरा'-सेवन की विधि, १००. मांस के तीन भेद, १०१. मांस-दर्शन का फल, १०२. पितर आदि के लिए हिंसा में दोष नहीं, १०३. पशु की बलि देने का मन्त्र, १०४. मांस के अङ्गों में ब्रह्मा आदि, १०५. मांस के अभाव में देय पदार्थ, १०६. मत्स्य, मांस, मद्य का अङ्गाङ्गी-सम्बन्ध, १०७. कुल-पूजा के न करने से दोष, १०८. कुल-पूजा में असमर्थ का कर्तव्य, १०९. शैव, वैष्णव आदि सभी सम्प्रदायों में मद्य-मांस आवश्यक, ११०. जप-यज्ञादि में कुल-द्रव्य आवश्यक, १११. अन्तर्याग करनेवाले की श्रेष्ठता, ११२. कुल-द्रव्य के सेवन का फल, ११३. मोक्ष का लक्षण, ११४. ब्राह्मण आदि द्वारा मद्य-पान का समय, ११५. याग-काल के सिवा मद्यादि का सेवन नहीं, ११६. वीर साधक को भी वृथा-पान निषिद्ध, ११७. कौलिक आचार न जाननेवाले को कुल-शास्त्र का अधिकार नहीं, ११८. अनधिकार द्रव्य-भोग से सभी धर्मों से बहिष्कार, ११९. अशुद्ध पञ्च-तत्त्वों का सेवन निषिद्ध, १२०. पश्वाचार मानने से कौल को नरक, १२१. मद्य में आसक्त व्यक्ति का पतन, १२२. सुधा-पान का वास्तविक लक्षण, १२३. मांस-मत्स्य-भक्षण का वास्तविक लक्षण, १२४. मैथुन का वास्तविक लक्षण।

६. छठा उल्लास (पूजा-रहस्य और द्रव्य-संस्कार) ३१

१२५. पूजन करनेवाले का लक्षण, १२६. कुल-पूजा का स्थान और आसन, १२७. पञ्च-शुद्धि की आवश्यकता, १२८. पूजा में मण्डल की आवश्यकता, १२९. सामान्य आदि पाँच पात्र, १३०. तर्पण-द्रव्य का विचार, १३१. असंस्कृत सुरा वर्जित, १३२. मद्य का अमृतीकरण, १३३. स्वर से उत्पन्न काम-दायिनी सोलह चन्द्र-कलाएँ, १३४. क-भ से ठ-ड तक वर्णों की वसु-दायिनी बारह सूर्य-कलाएँ, १३५. य से क्ष तक वर्णों की दस धर्म-दायिनी अग्नि कलाएँ, १३६. ॐकार की कलाओं के नाम, १३७. अकार से उत्पन्न ब्रह्म-जात सृष्ट्यात्मक १० कलाएँ, १३८. उकार से उत्पन्न विष्णु-जात स्थित्यात्मक १० कलाएँ, १३९. मकार

से उत्पन्न रुद्र-जात संहारात्मक १० कलाएँ, १४०. विन्दु से उत्पन्न ईश्वर-जात तिरोधानात्मक ४ कलाएँ, १४१. नाद से उत्पन्न सदा-शिव-जात अनुग्रहात्मक १६ कलाएँ, १४२. तत्त्व-संस्कार के मन्त्र, १४३. अमृतेशी-मन्त्र, १४४. दीपनी मन्त्र, १४५. पात्र-शुद्धि की विधि, १४६. पात्र-शुद्धि का मन्त्र, १४७. दिव्य-सिद्ध-मानवौघ गुरु-पंक्तियाँ, १४८. देवी के आवाहन का मन्त्र, १४९. ब्रह्म के रूप की कल्पना का कारण, १५०. देवी के आराधन के दश स्थान, १५१. प्रतीक में पूजन करने का कारण, १५२. नियम-पालन का महत्त्व, १५३. देवता और मन्त्र-यन्त्र में ऐक्य, १५४. 'यन्त्र'-शब्द की व्युत्पत्ति, १५५. यन्त्र-पूजा की विधि, १५६. देव-तर्पण की विधि, १५७. कामना-भेद से तर्पणांगुलि, १५८. गुरु-पंक्ति का ध्यान।

७. सातवाँ उल्लास (बटुक और शक्ति-पूजन) ३६

१५९. बटुकादि को बलि देना आवश्यक, १६०. बटुक-बलि के मन्त्र, १६१. योगिनी-बलि के मन्त्र, १६२. सर्व-भूत-पति बलि के मन्त्र, १६३. क्षेत्रपाल-बलि के मन्त्र, १६४. राज-राजेश्वर-बलि का मन्त्र, १६५. बटुकादि बलि देने के स्थान, १६६. वटुकादि बलि में अंगुलि-नियम, १६७. कुल-दीप-लक्षण और मन्त्र, १६८. शक्ति के पीने के बाद साधक द्वारा पान, १६९. कुलाष्टक-आठ कुल-शक्तियाँ, १७०. अकुलाष्टक-आठ अकुल-शक्तियाँ, १७१. 'सहजा' शक्ति, १७२. शक्ति के अभाव में उसका अनुकल्प, १७३. 'सुलक्षणा' और 'वर्जनीया' शक्ति, १७४. देवी को पूजा-समर्पण का मन्त्र, १७५. क्षमा-प्रार्थना-मन्त्र, १७६. शेषिका का मन्त्र, १७७. गुरु द्वारा शिष्यों को तत्त्व-त्रय-दान, १७८. शिष्य के देह का शोधन, १७९. आत्मादि तत्त्व-त्रय के भेद और उनके ज्ञान का फल, १८०. गुरु आदि के समक्ष बैठकर पान करना निषिद्ध, १८१. प्राण-भेदादि-ज्ञान बिना और मन्त्र-हीन पान निषिद्ध, १८२. पान करने का मन्त्र, १८३. पान की विधि, १८४. पान के तीन भेद-१. दिव्य, २. वीर, ३. पशु, १८५. पूर्णाभिषिक्तों के पान की विधि।

८. आठवाँ उल्लास (उल्लास एवं पान-भेद) ४१

१८६. आरम्भादि सात उल्लास और उनके लक्षण, १८७. द्रव्य-सङ्गति में नियम, १८८. चक्र में उच्छिष्ट-पान-भक्षण का नियम, १८९. उच्छिष्ट-भैरव को बलि देने की विधि, १९०. शान्ति-स्तव का पाठ, १९१. चक्र में स्थित साधकों की चेष्टाएँ, १९२. मन के विकृत न होने पर देव-भाव, १९३. कौलिक की निन्दा करने में दोष, १९४. कौलिक का सम्मान करने का फल, १९५. उन्मना उल्लास, अनवस्था और शाम्भवी मुद्रा, १९६. सप्तमोल्लास में आठों प्रत्यय, आठों अवस्थाएँ और आठों सिद्धियाँ, १९७. भैरवी-चक्र में जाति-भेद नहीं, १९८. चक्र में जाति-भेद मानने से दोष, १९९. चक्र में स्त्री-पुरुषों को बैठाने की विधि, २००. संसार का शिव-शक्त्यात्मक स्वरूप, २०१. शिव-शक्ति-समायोग से समाधि, २०२. कामुकता का निषेध।

९. नवाँ उल्लास (योग-योगीश-लक्षण और कौल-पूजा) ४७

२०३. ध्यान के दो भेद-१. स्थूल, २. सूक्ष्म, २०४. ब्रह्म-ज्ञान, २०५. योगी का लक्षण, २०६. समाधि का लक्षण, २०७. जीवन्मुक्ति का लक्षण, २०८. समाधिस्थ का लक्षण, २०९. जीवात्मा और परमात्मा में अभेद, २१०. ध्यान का लक्षण, २११. परम तत्त्व-ज्ञान का फल, २१२. योग का लक्षण, २१३. साधक की चार अवस्थाएँ, २१४. तत्त्व-ज्ञानी की उपासना-विधि, २१५. जीव और परमात्मा का स्वरूप, २१६. अधिकारी-भेद से देवता का स्थान, २१७. तत्त्वज्ञ योगी के लक्षण, २१८. कुल-योगी के लक्षण, २१९. कौलिक के लिए

विधि-निषेध नहीं, २२०. कुल-योगी के आचरण, २२१. उत्तम कौलिक के लक्षण, २२२. कौलिक की महिमा, २२३. कौलिक-पूजा का फल, २२४. कुलज्ञ की उपेक्षा करने से हानि, २२५. कुल-योगी को दान देने की विधि, २२६. वर्णाश्रम के आचार का पालन, २२७. कर्म करने का उद्देश्य, २२८. कर्म-योग का अधिकारी, २२९. अनधिकारी द्वारा कर्म-त्याग निषिद्ध, २३०. तत्त्वज्ञ ब्रह्म-ज्ञानी ही कर्म से मुक्त।

१०. दसवाँ उल्लास (विशेष दिवसों के पूजन) ५३

२३१. पूजा के तीन भेद, २३२. तृष्णा-वश मकारादि का सेवन पाप, २३३. पूजा की तिथियाँ, २३४. आचार्य या स्वयं द्वारा चक्र-पूजा, २३५. रोगादि की शान्ति के लिए योगिनी-पूजा, २३६. श्रीचक्र का लक्षण, २३७. नौ कुमारियों की पूजा-विधि और उसका फल, २३८. नौ युवतियों की पूजा-विधि, २३९. शुक्रवार में शक्ति-पूजा की विधि, २४०. नौ मिथुनों का अर्चन, २४१. वैशाख में इष्ट-देवता का अर्चन, २४२. माघ में इष्ट-देवता का अर्चन, २४३. कार्तिक में इष्ट-देवता का अर्चन, २४४. अष्टाष्टक की पूजा, २४५. श्रीकण्ठादि ५० मिथुनों की पूजा, २४६. केशवादि मिथुनों की पूजा, २४७. डाकिन्यादि की पूजा, २४८. दूती-याग का फल, २४९. त्रिक-पूजा का फल, २५०. कुल-पूजा के बिना चक्र में अधिकार नहीं, २५१. कुल-पूजा की प्रशंसा, २५२. अनुग्रह में छः प्रकार की व्यवस्था, २५३. डाकिनी आदि के ध्यान।

११. ग्यारहवाँ उल्लास (कुलाचार-कथन) ५९

२५४. क्रम का ज्ञाता कनिष्ठ होने पर भी अधिकारी, २५५. अज्ञात कौलिक के आने पर, २५६. अर्चन का समय, २५७. पूजा में कर्तव्य, २५८. कुलाचार्य के घर में अमृत की याचना, २५९. कुल-द्रव्य के पान में नियम, २६०. चक्र में निषिद्ध कार्य, २६१. पशु-सम्पर्क से हानि, २६२. साधक के कर्तव्य, २६३. पाँच प्रकार की गुरु-स्त्रियाँ, २६४. वर्जित स्त्रियाँ, २६५. पूजनीया स्त्रियाँ, २६६. दर्शन होने पर वन्दनीय, २६७. निषिद्ध कार्य, २६८. सभी स्त्रियाँ माता के समान, २६९. कुल-वृक्षों के सम्बन्ध में, २७०. कौलिकों के लिए वर्जित पञ्च-कार्य एवं पञ्च-पातक, २७१. कौल की विशेषता-१. निग्रह, २. अनुग्रह, २७२. पाप-जनक कार्य, २७३. कुल-निन्दक के बध में दोष नहीं, २७४. श्रीचक्र का वृत्तान्तादि गोपनीय, २७५. कौलिक का पतन करनेवाले दुष्कर्म, २७६. सदाचार की प्रधानता, २७७. दोषी साधकों के लिए प्रायश्चित्त, २७८. गुरु द्वारा आचार का तीन बार उपदेश, २७९. शिष्य का पाप गुरु को।

१२. बारहवाँ उल्लास (श्री पादुका-कथन) ६४

२८०. श्रीपादुका की महिमा, २८१. गुरु और ईश्वर का सारूप्य, २८२. गुरु-भक्ति से हीन व्यक्ति की निन्दा, २८३. गुरु-भक्ति और उसका फल, २८४. गुरु को मनुष्य न समझे, २८५. गुरु और मन्त्र के छोड़ने में दोष, २८६. गुरु के प्रति क्या करे, क्या न करे, २८७. गुरु को प्रणाम करने के नियम।

१३. तेरहवाँ उल्लास (गुरु-शिष्य-लक्षण) ६९

२८८. वर्जित शिष्य के लक्षण, २८९. ग्राह्य शिष्य के लक्षण, २९०. गुरु के लक्षण, २९१. निराकार होते हुए भी 'शिव' का गुरु-रूप, २९२. श्री गुरुदेव का ब्रह्मा-विष्णु-शिवत्त्व, २९३. देवता, मन्त्र और गुरु में अभेद, २९४. श्रेष्ठ गुरु के लक्षण, २९५. तत्त्व-ज्ञानी ही वास्तविक गुरु, २९६. गुरु के भेद।

१४. चौदहवाँ उल्लास (गुरु-शिष्य-परीक्षा) ७३

२९७. दीक्षा बिना मोक्ष नहीं, आचार्य बिना दीक्षा नहीं, २९८. दीक्षा से यहाँ पर-शिव से मिलन और देहान्त होन पर मुक्ति-लाभ, २९९. मन्त्रोपदेश की विधि, ३००. बिना परीक्षा दीक्षा-दाता गुरु व शिष्य दोनों दोषी, ३०१. समय-दीक्षा के बाद उपदेश, ३०२. शिष्य-परीक्षा की विधि, ३०३. शिष्य द्वारा गुरु-परीक्षा, ३०४. शिष्यों के तीन प्रकार, ३०५. उपदेश के तीन भेद, ३०६. तीन प्रकार की क्रिया-रहिता दीक्षा, ३०७. सात प्रकार की मोक्ष-दायिनी दीक्षा, ३०८. वेध की छः अवस्थाएँ, ३०९. कौलिकी दीक्षा-सिद्धाभिषेक की विधि एवं महिमा, ३१०. पूर्णाभिषिक्तों की प्रशंसा, ३११. दीक्षा के दो प्रकार और दीक्षा की महिमा, ३१२. शूद्रादि जातियों और स्त्रियों की दीक्षा-विधि।

१५. पन्द्रहवाँ उल्लास (पुरश्चरण-कथन) ७७

३१३. जप की श्रेष्ठता, ३१४. पुरश्चरण के पाँच अङ्ग, ३१५. भूत-लिपि से पुटित मन्त्र-जप, ३१६. अविधि से प्राप्त मन्त्र हानि-कारक, ३१७. पुरश्चरण के लिए प्रशस्त एवं निषिद्ध स्थान, ३१८. दीप-नाथ की पूजा आवश्यक, ३१९. त्याज्य और ग्राह्य आसन, ३२०. प्राणायाम-विधि और उसका फल, ३२१. न्यासादि-सहित मन्त्र का जप, ३२२. अक्ष-माला के दो भेद और उनमें जप का फल, ३२३. जप में अंगुलि-नियम, ३२४. जप के तीन भेद, ३२५. सूतक-द्वय से मुक्त मन्त्र ही सिद्धि-दायक, ३२६. मन्त्रार्थ आदि के ज्ञान बिना जप निष्फल, ३२७. चैतन्य-रहित मन्त्र निष्फल, ३२८. मन्त्र के ६० दोष, ३२९. मन्त्र के दस संस्कार, ३३०. पुरश्चरण-काल में भोजनादि का नियम, ३३१. सिद्धादि चक्रों का विचार, ३३२. वे मन्त्र, जिनमें सिद्धादि का विचार अनावश्यक, ३३३. जप की सफलता में बाधक बातें, ३३४. जप की सफलता के लिए आवश्यक बातें।

१६. सोलहवाँ उल्लास (काम्य-कर्म का विधान) ८२

३३५. जप-होमादि का परिमाण, ३३६. सिद्ध-मन्त्र वाले साधक को षट्-कर्म में सफलता, ३३७. काम्य-प्रयोग-कर्त्ता को मोक्ष नहीं, ३३८. प्रयोग के दोषों की शान्ति चक्र-पूजा से, ३३९. प्रयोग के पूर्व ज्ञातव्य बातें, ३४०. मन्त्रों का लिङ्ग-भेद, ३४१. कामना-भेद से मन्त्रादि की भिन्नता, ३४२. निज रूप की भावना, ३४३. सात्विक ध्यान और उसका फल, ३४४. राजस ध्यान और उसका फल, ३४५. तामस ध्यान और उसका फल, ३४६. शान्ति, वश्य, आकर्षणादि कर्मों की हवन-विधि, ३४७. परा-प्रासाद-मन्त्र का ज्ञाता जीवन्मुक्त, ३४८. विद्वेषण, उच्चाटन, मारण की विधि, ३४९. शान्ति आदि कर्मों में श्वेतादि वर्णों की भावना, ३५०. अनिष्ट करनेवालों के विनाश का उपाय।

१७. सत्रहवाँ उल्लास (गुरु आदि नामों की व्याख्या) ८८

३५१. श्रीगुरुदेव की प्रार्थना, ३५२. 'गुरु' आदि नामों की भावना, ३५३. पशु (अधार्मिक) के घर में पुस्तक रखने आदि का निषेध, ३५४. पुस्तक की नित्य-पूजा, ३५५. ऊर्ध्वाम्नाय-माहात्म्य के पाठ व श्रवण का फल।

***

प्राक्कथन

(द्वितीय-तृतीय संस्करण में प्रकाशित)

'**कुलार्णव तन्त्र**' के महत्त्व को हृदयङ्गम कर '**कौल-कल्पतरु**' **शुक्ल जी** के निर्देशन में उसका संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर पहले-पहल '**हिन्दी कुलार्णव**' के नाम से **सं० २०२१** में प्रकाशित हुआ था। उसकी सभी प्रतियाँ समाप्त हो जाने के बाद उसके दूसरे संस्करण के प्रकाशन का विचार उठा ही था कि ज्ञात हुआ कि **स्वीडन** के **उप्साला विश्व-विद्यालय** में एक विदेशी सज्जन **श्री गुन्नार कार्ल्सेट** उस पर अनुसन्धान ही नहीं कर रहे हैं, अपितु **स्वीडिश भाषा** में उसके प्रथम उल्लास का अनुवाद भी प्रकाशित हो गया है। तब यह निश्चय किया गया कि इस प्रामाणिक तन्त्र का विस्तृत हिन्दी-रूपान्तर प्रकाशित किया जाय। फलत: **सं० २०३७** में उसका विस्तृत हिन्दी-रूपान्तर प्रकाशित हुआ।

'**कुलार्णव तन्त्र**' कितना प्रामाणिक ग्रन्थ है, यह इसी से समझा जा सकता है कि '**श्री श्रीविद्यार्णव तन्त्र**' में उसके प्रणेता **श्री विद्यारण्य यति** ने बड़े विचार-विमर्श के बाद यह निर्दिष्ट किया है कि–

'**कुलार्णवोक्त-तन्त्र-वचनान्येवादरणीयानीति सङ्गतं प्रतिभाति इत्यलं जल्पितेन**…'

अर्थात् '**कुलार्णव**' में कहे हुए वचन ही आदर करने योग्य हैं, यह स्पष्टत: तर्क-सङ्गत प्रतीत होता है। अत: तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिए।

श्री विद्यारण्य यति श्रीभगवच्छङ्कराचार्य की शिष्य-परम्परा में एक विलक्षण सिद्ध पुरुष हो गए हैं और उनके द्वारा '**श्री श्रीविद्यार्णव तन्त्र**' की रचना आज से लगभग ९०७ **वर्ष पूर्व सं० ११३० या सन् १०७३ ई०** में उस समय उपलब्ध **तन्त्र-साहित्य** के आधार पर की गई थी। इस वृहद् ग्रन्थ में '**कुलार्णव तन्त्र**' के उद्धरण स्थान-स्थान पर दिए गए हैं।

इसी प्रसङ्ग में यह भी उल्लेखनीय है कि २०वीं सदी के आरम्भ में **दरभङ्गा-नरेश महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह** और **कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सर जान वुडरफ (आर्थर एवेलान)** के द्वारा स्थापित '**आगम अनुसन्धान समिति**' ने भी '**कुलार्णव तन्त्र**' के महत्त्व को देखते हुए अपनी '**तान्त्रिक टेक्स्ट्स**' नामक ग्रन्थ-माला के अन्तर्गत उसका एक सु-सम्पादित संस्करण **सन् १९१६** में प्रकाशित किया था। उस संस्करण की भूमिका में **न्यायमूर्ति वुडरफ** ने अंग्रेजी में लिखा है कि–'' …**कुलार्णव' कौल-सम्प्रदाय का एक प्रमुख और कदाचित् सबसे अग्रगण्य तन्त्र है। अपनी श्रेणी के ग्रन्थों में इसकी बड़ी ख्याति है और इसीलिए इसे बराबर प्रमाण-रूप में उद्धत किया गया है।**…'

सन् १९६५ में श्री एम० पी० पण्डित द्वारा '**कुलार्णव तन्त्र**' का **संक्षिप्त अंग्रेजी भावानुवाद** गणेश एण्ड कं० मद्रास से प्रकाशित हुआ, जिसके प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में **न्यायमूर्ति वुडरफ** की उपर्युक्त सम्मति को और भी स्पष्ट करते हुए अंग्रेजी में लिखा है कि–'…**तन्त्र-साहित्य में** '**कुलार्णव**' सबसे अधिक प्राय: उद्धृत किया जानेवाला ग्रन्थ है, न केवल इसलिए कि यह उस **कौल-मार्ग** का एक प्रमुख प्रामाणिक ग्रन्थ है, जो कि आगमों के **शाक्त-सम्प्रदाय** का सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण एवं साहसिक चरण है, अपितु इसलिए भी क्योंकि अपनी व्यापक शैली में यह **तान्त्रिक साधना** के सभी मूल सिद्धान्तों, उसके अन्तर्निहित दर्शन और उसके आध्यात्मिक तथा सामाजिक अनेक परिणामों पर स्पष्ट प्रकाश डालता है…'

'**कुलार्णव तन्त्र**' के ऐसे ही महत्त्व के कारण विदेशी विद्वानों का ध्यान भी इसके प्रति आकृष्ट हुआ है। ऐसी दशा में यह लज्जा की बात होगी, यदि अपने देश के लोग इस तन्त्र की बातों को अधिक-से-अधिक जानने की चेष्टा न करें। प्रस्तुत संस्करण का मुख्य ध्येय यही है कि **भारत के अध्यात्म-प्रेमी** अपने इस **विश्व-विख्यात तन्त्र** के विषयों से परिचित हों।

प्रयाग, कार्तिक पूर्णिमा, सं० २०३७ — **–'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल**

हिन्दी

कुलार्णव तन्त्र

पहला उल्लास : जीव की स्थिति

जीवों के मोक्ष का उपाय

श्री देवी ने ईश्वर से कहा–हे भगवन्! इस सार–हीन कठिन संसार में नाना प्रकार के शरीरों से अनन्त जीव–राशियाँ स्थित होकर उत्पन्न होती हैं और मरती हैं और उनका कोई अन्त नहीं है। घोर दुःख से व्याकुल होकर वे कभी सुखी नहीं होतीं। हे प्रभो! किस उपाय से वे मुक्त हो सकती हैं, यह आप मुझे बतलाइए।

ईश्वर ने उत्तर दिया–हे देवि! सुनो। तुमने मुझसे जो पूछा है, उसे बताता हूँ। इसके सुनने मात्र से मनुष्य संशय से मुक्त हो जाएगा।

शिव का स्वरूप

हे देवि! परब्रह्म–स्वरूपी शिव निष्कल है। वह सर्वज्ञ, सर्व–कर्त्ता, सर्वेश और निर्मल–हृदय है। वह आदि अन्त से रहित एक ज्योति है तथा निर्विकार, पर से भी परे, निर्गुण और सच्चिदानन्द है।

जीव का लक्षण

जीव–संज्ञावाले उसी शिव के अंश हैं, जो असत्य विद्या के द्वारा उससे भिन्न हुए हैं, जैसे कि अग्नि में से चिनगारियाँ फूटती हैं।

देह-धारियों की सामान्य अवस्था

वे जीव गर्भ आदि विभिन्न उपाधियों और अनादि कर्मों आदि के कारण शिव से पृथक् रहते हैं तथा अपने सुख एवं दुःख–दायक पुण्य–पापों से नियन्त्रित रहते हैं। अपने कर्मानुसार प्राप्त अमुक–अमुक जाति से युक्त देह, आयु और प्रारब्ध का वे जन्म–जन्मान्तरों में भोग करते रहते हैं, जिसका कोई अन्त नहीं है।

देह-धारियों के चतुर्विध शरीर

१. उद्भिज् अर्थात् पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले स्थावर जीव, २. स्वेदज अर्थात् पसीने से उत्पन्न होनेवाले क्रिमि (कीट) जीव, ३. अण्डज अर्थात् अण्डों से उत्पन्न होनेवाले जलचर व खेचर (पक्षी) जीव और ४. जरायुज अर्थात् गर्भ से उत्पन्न होनेवाले पशु, मनुष्यादि जीव–इन चार प्रकार के शरीरों में उक्त जीव सहस्रों बार जन्म लेते हैं।

मनुष्य-शरीर की श्रेष्ठता

उक्त प्रकार के चौरासी लाख शरीरों में से मनुष्य–शरीर ही ऐसा है, जिसके द्वारा जीव को तत्त्व का ज्ञान होता है। अन्य शरीरों में तत्त्व का ज्ञान नहीं मिलता।

अच्छे कर्मों के फल–स्वरूप वे मानव होकर जब ज्ञानी होते हैं, तब मोक्ष को प्राप्त करते हैं और मोक्ष का कारण हे महेश्वरि! साक्षात् तत्त्व–ज्ञान है।

मनुष्य–शरीर को प्राप्त कर जो आत्मा को मुक्त नहीं करता, उससे बड़ा पापी कौन है! उत्तम जन्म और सुन्दर इन्द्रियों को पाकर भी जो अपने हित को नहीं समझता, वह आत्म–हत्या करनेवाले के समान ही

है। मनुष्य-शरीर के बिना कोई जीव पुरुषार्थ नहीं कर सकता। अतः शरीर-रूपी धन पाकर पुण्य कर्मों को करना चाहिए।

शरीर की रक्षा

शरीर की रक्षा का सदा प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि मनुष्य-शरीर बार-बार नहीं मिलता। जब तक शरीर है, तब तक तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करने का अभ्यास करे क्योंकि शरीर की आयु व्यतीत होती जाती है। अतः जब तक वृद्धावस्था, रोग, दुःख, आपत्ति आदि से बचा रह सके, तब तक अपने कल्याण के लिए प्रयत्न करे। सांसारिक कार्यों में समय बीतने का पता नहीं चलता। सुख-दुःख में डूबा हुआ जीव अपने हित को नहीं जान पाता। मोह में पड़कर उसे भय नहीं रहता कि सम्पत्ति स्वप्न के समान मिथ्या है, यौवन फूल के समान मुरझा जानेवाला है, आयु बिजली के समान चञ्चल है। सौ वर्ष का जीवन बहुत कम है क्योंकि आधा समय तो निद्रा में बीत जाता है। बचपन, बुढ़ापा और रोगादि का समय भी व्यर्थ हो जाता है। जल के फेन के समान क्षण-भंगुर इस शरीर में स्थित जीव इस नाशवान् अप्रिय संसार में कैसे निर्भय रह सकता है?

हे देवि! तुम्हारी माया से मोहित होकर जीव उक्त बातों को देखता, सुनता, पढ़ता हुआ भी नहीं समझ पाता। वह यही रटता रहता है कि 'यह मेरा पुत्र है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा धन है, ये मेरे बन्धु हैं। यह काम मैंने कर लिया, वह काम करना है' आदि और मृत्यु उसे खा जाती है। मृत्यु किसी की प्रतीक्षा नहीं करती-चाहे बालक हो या युवा, वृद्ध हो या गर्भस्थ शिशु-सभी को वह चट कर जाती है। यही इस संसार का नियम है।

ब्रह्मा आदि की भी नश्वरता

ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता और समस्त भूत भी नाशमान हैं। अतः अपने कल्याण के लिए यत्नशील रहना चाहिए।

आयु-क्षय के कारण

अपने वर्ण, आश्रम के आचारों का पालन न करने से, अनुचित रूप से धन-धान्यादि का ग्रहण करने से और पर-स्त्री, पराए धन की लालसा करने से आयु का नाश होता है। वेदादि शास्त्रों का अभ्यास न करने से, गुरु-जनों का पूजन-सत्कार न करने से और इन्द्रियों का निग्रह न करने से मनुष्यों की आयु का क्षय होता है। आधि, व्याधि, विष, शस्त्र, सर्प, पशु आदि जिसके द्वारा मृत्यु होनी होती है, उसी के द्वारा जीवन समाप्त होता है और जीव एक शरीर से निकल कर दूसरे शरीर को प्राप्त करता है। जैसे एक घर से दूसरे घर में जाया जाता है, उसी प्रकार शरीर का परिवर्तन होता है। बचपन, युवावस्था और वृद्धावस्था में जैसे शरीर बदलता है, वैसे ही अपने परम अंश (कारण शरीर) के साथ जीव अपने वर्तमान शरीर को छोड़कर अगले शरीर को ग्रहण करता है।

कृत कर्मों का फल अगले जन्म में

इस संसार में जो कर्म किया जाता है, उसका फल अगले जन्म में भोगने को मिलता है, जिस प्रकार वृक्ष की जड़ को पानी से सींचने पर उसकी डालों में फल निकलते दिखाई देते हैं।

अपने अपराध से जीव को दुःखादि

दरिद्रता, दुःख, रोग, बन्धन, व्यसन आदि अपने ही अपराध-रूपी वृक्ष के फल प्राणों को मिलते हैं।

सङ्ग से ही सभी दोष उत्पन्न होते हैं। अतः निःसङ्ग द्वारा ही मोक्ष मिलता है। इसलिए सङ्ग को छोड़कर तत्त्व-निष्ठ बने और इस प्रकार सुखी होना चाहिए। सङ्ग को यदि सर्वथा न छोड़ सके, तो सज्जनों

का सङ्ग करे क्योंकि सत्सङ्ग और विवेक–ये दो आँखों के समान हैं। जो मनुष्य इनसे रहित है, वह अन्धा ही है और मार्ग–भ्रष्ट अवश्य हो जाएगा।

संसार के दोष

यह संसार दुःख का मूल है। जो संसार में लिप्त है, वही दुःखी है। जो संसार का त्याग करता है, वह सुखी होता है। सभी प्रकार के दुःखों, समस्त प्रकार की आपत्तियों और सब प्रकार के पापों से पूर्ण इस संसार से दूर रहना चाहिए। संसार में जिसका मन आसक्त है, उसे जीवन के आदि, मध्य और अन्त में दुःखों का ही सामना करना पड़ता है। अतः संसार को छोड़कर तत्त्व–निष्ठ बनना चाहिए और सुखी होना चाहिए। स्त्री–धन आदि में लिप्त जीव कभी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर पाता। कुटुम्ब की चिन्ता जिसे है, उसके ज्ञान, शील आदि गुण नष्ट हो जाते हैं। सुख पाने के लोभ में पड़ा हुआ जीव मृत्यु को नहीं समझ पाता। हित–अहित को न जानकर पेट भरने में ही जो अज्ञानी लोग लगे रहते हैं, वे नरक को प्राप्त करते हैं। निद्रा, मैथुन और भोजन सभी प्राणियों में समान रूप से होते हैं। जो ज्ञानी होता है, वही 'मानव' कहा जाता है। ज्ञान से हीन 'पशु' है।

प्रातः–काल मल–मूत्र से, मध्याह्न में भूख–प्यास से और रात्रि में वासना व निद्रा से मनुष्यों को कठिनाई होती है। अपने शरीर और स्त्री आदि में व्यस्त रहनेवाले सभी जीव अज्ञान से मोहित होकर जन्म लेते रहते हैं और मरते रहते हैं। अपने–अपने वर्ण और आश्रम के आचार में पड़े हुए सभी मानव परम तत्त्व को नहीं जानते और नष्ट हो जाते हैं। कुछ लोग कर्म–निष्ठ होते हैं, तो कुछ यज्ञ–पूजादि करते हैं। अज्ञान में पड़े हुए ये लोग अपने को और दूसरों को धोखा देते रहते हैं। कर्म–काण्ड में लगे हुए मनुष्य नाम मात्र को सन्तुष्ट होकर मन्त्र–जप, होमादि विस्तृत यज्ञों से भ्रमित रहते हैं और उपवास आदि के नियमों से शरीर को सुखाकर मूर्ख लोग माया–वश मोक्ष पाने की आशा करते हैं।

विवेक-ज्ञान के बिना शारीरिक कष्टादि द्वारा मुक्ति नहीं

शरीर को कष्ट देने मात्र से अविवेकी (अज्ञानी) लोगों को मुक्ति नहीं मिल सकती। दम्भ करनेवाले लोग धन और भोजन कमाने में लगे साधु–वेष–धारी ज्ञानी बनकर लोगों को भ्रम में डालते हुए संसार में घूमते रहते हैं। इस प्रकार संसार के सुख में आसक्त किन्तु 'मैं ब्रह्म हूँ' कहनेवाले व्यक्ति कर्म और ब्रह्म दोनों से भ्रष्ट होते हैं, उनका सर्वथा त्याग करना चाहिए।

अकेले कर्म-काण्ड का दोष

लज्जा–शून्य नङ्गे होकर गधे आदि घूमा करते हैं, क्या वे योगी हैं? मिट्टी और भस्म लगाने से यदि मुक्ति मिलती है, तो क्या गाँव की मिट्टी में रहनेवाले मुक्त होते हैं? हरिण आदि पशु घास–पत्ते और जल का आहार करते हैं तथा सदैव वन में रहते हैं, तो क्या वे योगी हैं? मेढ़क, मछली आदि जन्म से मृत्यु तक गङ्गा आदि नदियों के किनारे रहते हैं, क्या वे व्रत करनेवाले हैं? तोते और मैंना लोगों के सामने आनन्द–पूर्वक पाठ करते हैं, क्या वे देवता हैं? कबूतर कङ्कडों का आहार करते हैं और चातक पक्षी पृथ्वी के जल को नहीं पीते, क्या वे योगी हैं? सुअर आदि पशु जाड़े–गर्मी–धूप को सहन करते और भक्ष्य–अभक्ष्य उनके लिए समान है, क्या वे योगी हैं?

तत्त्व ज्ञान ही मोक्ष का कारण

इस प्रकार उक्त कर्म लोगों को भ्रम में डालनेवाले हैं। मोक्ष का कारण साक्षात् तत्त्व का ज्ञान है।

परमार्थ-ज्ञान के बिना शास्त्रादि-पाठ से मुक्ति नहीं

षड्–दर्शन–रूपी गहरे कुएँ में पशु लोग पड़े रहते हैं। पशु–पाशों में बँधे हुए वे परमार्थ को नहीं

जानते। वेद-शास्त्र-रूपी सागर में डूबते-उतराते हुए वे लोग कुतर्क-रूपी भयङ्कर लहरों और मगर-घड़ियालों से फँसे रहते हैं।

वेद, आग्रम और पुराणों को जाननेवाला जो व्यक्ति परमार्थ को नहीं जानता, उसका सारा कथन कौए के काँव-काँव के समान निरर्थक है। पर-तत्त्व से दूर रहकर रात-दिन चिन्ता करते हुए यही पाठ करते रहते हैं कि 'यह ज्ञान है, इसे जानना चाहिए।' वाक्य, छन्द, निबन्ध, काव्य, अलङ्कार से शोभित मूढ़ लोग चिन्ता से दुखी होकर व्याकुल रहते हैं। परम तत्त्व कुछ और है, लोग व्यर्थ की बातों से क्लेश पाते हैं। शास्त्र का सद्भाव कुछ और है, व्याख्या उसको भिन्न ही करते हैं। उन्मनी-भाव की चर्चा करते हैं, किन्तु स्वयं उस भाव को अनुभव नहीं करते। कुछ लोग अहङ्कार से मारे जाते हैं, कुछ लोग उपदेश से दूर रहते हैं व एक दूसरे से विवाद करते हुए शास्त्रों का पाठ करते हैं। परम तत्त्व को नहीं जानते।

आत्मस्थ तत्त्व

आत्मस्थ तत्त्व को न जानकर मूढ़ लोग शास्त्रों से मुग्ध रहते हैं। वेद-शास्त्रों को पढ़ते हैं, किन्तु उनके भाव को समझनेवाले दुर्लभ हैं। जैसे ग्वाले के बगल में ही छाग विद्यमान हैं, किन्तु उसे वह मूर्ख कुएँ में ढूँढ़ता है। संसार का मोह शब्द-ज्ञान से नष्ट नहीं होता। दीपक की बात करने से अँधेरा दूर नहीं होता। प्रज्ञा से हीन व्यक्ति का पढ़ना उसी प्रकार है, जैसे अन्धे का दर्पण में देखना।

प्रज्ञावान् को ही शास्त्र से ज्ञान मिलता है। विद्या, दान, शूरता आदि गुणों से प्रसिद्ध लोग आगे-पीछे, अगल-बगल यह विवाद करते रहते हैं कि 'तत्त्व इस प्रकार का है, नहीं उस प्रकार का है।' प्रत्यक्ष को ग्रहण नहीं करते, वार्ता करने से क्या प्राप्त होता है। इस प्रकार शास्त्र में जो मुग्ध हैं, वे 'तत्त्व' से बहुत दूर रहते हैं। 'यह ज्ञान है, इसे जानना चाहिए'—इस प्रकार सर्वत्र सुनना चाहते हैं और सहस्र वर्षों की आयु में भी शास्त्र का सार नहीं समझ पाते। वेद आदि अनेक शास्त्रं हैं और स्वल्प आयु जैसे असंख्य विघ्न हैं। अतः सार तत्त्व को जानकर बुद्धिमान व्यक्ति को सभी शास्त्रों को छोड़ देना चाहिए। जिस प्रकार अन्न को चाहनेवाला भूसी का त्याग कर देता है। जो अमृत का पान कर तृप्त हो जाता है, वह भोजन की चिन्ता नहीं करता। इसी प्रकार तत्त्व का ज्ञाता शास्त्रों से सम्बन्ध नहीं रखता।

ज्ञान से ही मुक्ति

न तो वेदों के अध्ययन से मुक्ति मिलती है, न दर्शनों के मनन से। यही बात सभी शास्त्रों पर लागू होती है। ज्ञान ही से मुक्ति मिलती है।

गुरु-वाणी ही मुक्तिदा

मुक्ति-दायिनी एक-मात्र गुरु-वाणी है, शेष सभी विद्याएँ विडम्बना मात्र हैं। शिव के द्वारा कथित अद्वैत-तत्त्व तो क्रिया-रूपी परिश्रम से रहित है। उसे गुरु-मुख से प्राप्त करना चाहिए।

ज्ञान के दो प्रकार- १. आगम, २. विवेक

ज्ञान दो प्रकार का बताया गया है—एक तो आगम से प्राप्त होता है और दूसरा विवेक से। आगम से प्राप्त ज्ञान शब्द-ब्रह्म-परक होता है और विवेक से प्राप्त ज्ञान परम-ब्रह्म का निदर्शक होता है। कुछ लोग द्वैत को चाहते हैं तो कुछ अद्वैत को, किन्तु मेरे तत्त्व को जाननेवाले द्वैत-अद्वैत से रहित होते हैं। 'मेरा है' और 'मेरा नहीं है'—ये दो पद क्रमशः बन्धन और मोक्ष-कारक हैं। वही वास्तव में कर्म है, जो बन्धन-कारक न हो और वही विद्या है, जो मुक्ति-कारिणी हो।

इन्द्रिय-निग्रह और गुरु-कृपा बिना तत्त्व-ज्ञान नहीं

जब तक कामना उत्तेजित रहती है, सांसारिक इच्छाएँ बनी रहती हैं, इन्द्रियाँ चञ्चल रहती हैं, तब तक तत्त्व की बात कहाँ? जब तक प्रयत्न-रूपी रोग है, सङ्कल्प की कल्पना बनी है, मन में स्थिरता नहीं है, तब तक तत्त्व की बात कहाँ? जब तक देहाभिमान है, ममता बनी है, गुरु की दया प्राप्त नहीं है, तब तक तत्त्व की कथा कहाँ? जब तक तप, व्रत, तीर्थ, जप, होम, अर्चन आदि है और वेद-शास्त्र-आगम की चर्चा है, तब तक तत्त्व की कथा कहाँ?

अतएव हे देवि! यदि आत्म-सिद्धि की इच्छा है, तो सभी प्रयत्नों से सभी अवस्थाओं में सदैव तत्त्व-निष्ठ रहे। ताप-त्रय के कष्ट से पीड़ित व्यक्ति स्वधर्म-ज्ञान-रूपी पुष्प और स्व-कुलोक्त (अर्थात् अपने कुल में जो बातें प्रचलित हैं ऐसे) फलवाले कल्प-वृक्ष की छाया का आश्रय ग्रहण करे।

हे पार्वति! अधिक कहने से क्या लाभ? रहस्य की बात सुनो। कुल-धर्म के सिवा मुक्ति नहीं है, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है। गुरु-मुख से उस तत्त्व को जानकर हे देवि! इस घोर संसार के बन्धन से जीव सहज ही मुक्त हो जाता है।

***

दूसरा उल्लास : कुल-धर्म का माहात्म्य

कुल-धर्म और ऊर्ध्वाम्नाय

श्री देवी ने पूछा—हे कुलेश! आपने कुल-धर्म के सम्बन्ध में तो बताया, किन्तु उस पर प्रकाश नहीं डाला। उस सर्व-धर्मोत्तम धर्म का और ऊर्ध्वाम्नाय का माहात्म्य बताने की कृपा करें।

ईश्वर ने उत्तर दिया—हे देवि! सुनो, जो तुम पूछती हो, उसे मैं कहूँगा। परम्परा के क्रम से आनेवाला और एक मुख से दूसरे मुख में स्थित होनेवाला वह तत्त्व यद्यपि अकथनीय है, तथापि परमार्थ की दृष्टि से मैं उसे कहता हूँ।

कुलाचार की श्रेष्ठता

सबसे उत्तम वेद हैं, वेदों से उत्तम वैष्णव हैं, वैष्णव से उत्तम शैव, शैव से उत्तम दक्षिण, दक्षिण से उत्तम वाम, वाम से उत्तम सिद्धान्त, सिद्धान्त से उत्तम कौल और कौल से उत्तम कोई नहीं है। वेद और आगम-रूपी महा-समुद्र को ज्ञान-रूपी मथानी से मथकर मैंने इस कुल-धर्म को प्रकट किया है। कुल-धर्म का आश्रय लेकर श्रेष्ठ मनुष्य स्वर्ग से दूसरे लोक को जाकर मोक्ष-रूपी रत्न को प्राप्त करता है।

भोग-योगात्मक 'कौल'

जो योगी होता है, वह भोगी नहीं होता और जो भोगी होता है, वह योग को नहीं जानता, किन्तु कौल भोग और योग दोनों से युक्त है। अतः हे प्रिये! वह सबसे श्रेष्ठ है। भोग साक्षात् योग का रूप ले लेता है, पातक सुकृत बन जाता है और संसार मोक्ष का साधन हो जाता है; हे कुलेश्वरि! यही कुल-धर्म है।

देवता भी कुल-धर्म-परायण

ब्रह्मा, इन्द्र, अच्युत, रुद्रादि देवता और श्रेष्ठ मुनि भी कुल-धर्म-परायणं रहे हैं, मनुष्यों की क्या बात है। अतः यदि आत्म-सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा हो, तो सभी धर्मों और मतों को छोड़कर कुल-धर्म का ही ज्ञान प्राप्त करे।

पूर्व-जन्म के अभ्यास से कुल-धर्म का ज्ञान

पूर्व जन्मों में किए गए अभ्यास के फल-स्वरूप जीव को कुल-धर्म का ज्ञान होता है। उपदेश के बिना ही, जैसे स्वप्न में प्राप्त अनुभूतियों से ज्ञान मिलता है, पिछले सहस्त्र-जन्मों में मनुष्य की जो बुद्धि विकसित होती है, उसी से ज्ञान मिलता है, उपदेश की आवश्यकता ही नहीं होती।

मन्त्र-जपादि से शुद्ध-चित्त को कुल-धर्म का ज्ञान

शैव, वैष्णव, दुर्गा, सूर्य, गणपति, इन्द्र आदि के मन्त्रों से जिसका चित्त विशुद्ध हो चुका है, उसे ही कुल-धर्म का ज्ञान होता है। अन्य सभी धर्म तो 'पुनरावर्तक' हैं अर्थात उनके पालन करनेवाले आवागमन के चक्र में पड़े रहते हैं, किन्तु कुल-धर्मानुयायी 'अनिवर्तक' अर्थात् आवागमन से मुक्त हो जाते हैं।

कुल-धर्म का ज्ञान पाने के अन्य कारण

पूर्व जन्म में किए हुए तप, दान, यज्ञ, तीर्थ-सेवन, जप, व्रत आदि के द्वारा जिन मनुष्यों के पाप नष्ट हो जाते हैं, उन्हें कुल-धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है। जिस पर भगवती और शिव दोनों प्रसन्न होते हैं और जिसे देवता एवं गुरु में भक्ति है, उसे कुल-धर्म का ज्ञान होता है।

कुल-धर्म के ज्ञान के अधिकारी

शुद्ध-चित्त, शान्त, कर्म-शील, गुरु-सेवा-परायण और परम भक्त को कुल-धर्म का ज्ञान होता है। श्री गुरुदेव में, कुल-धर्म के शास्त्रों में, कौलिकों में और कौल-परिवारों में जिसकी दृढ़ भक्ति होती है, उसे कुल-धर्म का ज्ञान मिलता है।

श्रद्धा, नम्रता, हर्ष आदि के साथ सदाचार के नियमों का दृढ़ता से पालन करते हुए जो गुरु की आज्ञा को मानता है, उसे कुल-धर्म का ज्ञान होता है।

समयाचारी को कुल-धर्म बताने का दोष

अनधिकारी व्यक्ति कुल-धर्म के विज्ञान को समझ नहीं सकता। अतः परीक्षा लेकर ही अधिकारी व्यक्ति को कुल-धर्म का ज्ञान कराना चाहिए अन्यथा देवता का शाप मिलता है। समयाचार का पालन करनेवाला यदि कुल-धर्म का ज्ञान बताता है, तो वह बतानेवाला (गुरु) और उस ज्ञान को प्राप्त करनेवाला (शिष्य) दोनों ही योगिनियों द्वारा नाश को प्राप्त होते हैं।

कुल-धर्म की महिमा

गुरु शिष्य को उद्बोधित कर उसे कुल-धर्म का ज्ञान कराए। इससे दोनों को नित्य योगिनियों और वीरों के साक्षात् सम्मिलन का आनन्द प्राप्त होगा। जो अनायास ही संसार-सागर को पार करना चाहता है, उसे इस कुल-धर्म को जानना चाहिए। कुल-धर्म के महा-मार्ग से जाकर अविलम्ब ही मुक्तिपुरी में पहुँचा जाता है, इसमें सन्देह नहीं। अतएव कौल मार्ग का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

कुल-शास्त्र का अनादर कर जो पशु-शास्त्रों का अभ्यास करता है, वह मानों अपने घर की खीर को छोड़कर भीख माँगता है। कुल-धर्म को छोड़कर जो पर-धर्म को मानता है, वह मानों हाथ में रखे रत्न को छोड़कर दूर स्थित काँच की इच्छा करता है। कुल-मन्त्रों को छोड़कर जो पशु-मन्त्रों का जप करता है, वह मानों अन्न के ढेर को छोड़कर भूसे के ढेर की इच्छा करता है। कुल-वंश को छोड़कर जो दूसरे वंश की इच्छा करता है, वह प्यासा मानों तालाब को छोड़कर मृग-तृष्णा के पीछे दौड़ता है। जिस प्रकार इन्द्र-जाल से

उत्पन्न माया क्षण भर तक ही सुख देती है, उसी प्रकार कौल-धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म (समय) अल्प काल तक ही सुख देते हैं।

कुल (शक्ति-देवी) उपासना से सद्गति

कुल-धर्म को बिना जाने हुए जो संसार में मोक्ष पाने की इच्छा करता है, वह मानों अपार सागर को हाथों से तैरकर पार करना चाहता है। जो दूसरे दर्शनों द्वार भुक्ति और मुक्ति की कामना करता है, वह मानों स्वप्न में प्राप्त धन से धनी होना चाहता है। जिस प्रकार शुक्ति (सीप) में चाँदी की भ्रान्ति होती है, उसी प्रकार अन्य समयों (धर्मों) में भुक्ति और मुक्ति दिखाई देती हैं। सब प्रकार के कर्मों से रहित और वर्ण तथा आश्रम से हीन व्यक्ति भी कुल-धर्म में निष्ठा रखकर भुक्ति और मुक्ति का अधिकारी हो जाता है। कुल के ज्ञान से रहित व्यक्ति भी यदि कुल की भक्ति का आश्रय लेता है, तो वह सद्गति को प्राप्त करता है। फिर कुल-धर्म में लगे हुए व्यक्ति का क्या कहना है।

कुल-धर्म को नष्ट करने से वह नाश करता है और रक्षा करने से वह शीघ्र ही पूजनीय बनाता है। अतः उसे न छोड़े। 'सभी भाई-बन्धु चाहे निन्दा करें, स्त्री-पुत्रादि चाहे छोड़ दें, लोग मुझे देखकर चाहे हँसी उड़ाएँ या राजा चाहे दण्ड दें, किन्तु हे पर-देवते! मैं तुम्हारी बार-बार सेवा ही करता रहूँगा। मन-वचन-शरीर-कर्म से मैं तुम्हारे धर्म को नहीं छोड़ूँगा–इस प्रकार आपत्ति में पड़कर भी जिसकी भक्ति दृढ़ बनी रहती है, वह देवताओं के द्वारा पूजित होकर शिवत्व को प्राप्त करता है। रोग, दरिद्रता के दुःख आदि से सदैव पीड़ित होकर भी, जो भगवती की उपासना भक्ति-पूर्वक करता है, वह सद्गति को प्राप्त करता है।

लोग प्रशंसा करें या निन्दा, लक्ष्मी जाए या रहे, मृत्यु आज हो या युग के अन्त में, कुल-धर्म को न छोड़े। न लोभ से, न क्रोध से, न द्वेष से, न मत्सर से, न काम से और न भय से कुल-धर्म का त्याग करे। जो जीव कुल-धर्म का आश्रय लेकर भगवती की पूजा नहीं करता, वह जन्म लेते ही आत्म-शत्रु भूतारियों (घातक जीवों) से क्लेश पाता है जैसे अन्न में पुलाक और जीवों में पतङ्ग।

कौल-धर्म से जो विमुख हैं, वे जल के बुलबुलों के समान नगण्य हैं। वृक्षों और मृग-पक्षियों का भी जीवन है, किन्तु वास्तविक जीवन उसी का है, जिसका मन कुल-धर्म में लगा हुआ है। कुल-धर्म से विहीन जीव के दिन आते हैं और बीत जाते हैं। वह लोहार की धौंकनी के समान श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं है।

कुल-धर्म को न जाननेवाला सदा पशु के समान

कुल-धर्म को न जाननेवाला मनुष्य चलते-फिरते, बैठते या जागते-सोते पशु के समान ही जीवन व्यतीत करता है। विद्वान हो या मूर्ख, धार्मिक हो या अधार्मिक, व्रतधारी हो या व्रत से विमुख हो, जो मनुष्य कौल से विमुख है, वह संसार में जन्म भर लेता है, उसका कोई महत्त्व नहीं होता, जैसे द्वार पर बँधे गधे का कोई महत्व नहीं।

कुल-धर्म के पालन करनेवाले ही मनुष्य

कुल-धर्म-परायण सज्जन को ही मनुष्य कहते हैं। अन्य तो केवल हड्डियों और खाल के पञ्जर मात्र होते हैं।

कुल को न जाननेवाला वेदज्ञ चाण्डाल से भी अधम

चारों वेदों का ज्ञाता यदि कुल को नहीं जानता, तो वह चाण्डाल से भी अधम है और यदि चाण्डाल कुल का ज्ञान रखता है, तो वह ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ है।

देवी-भक्त ही कुलज्ञ

गुरु की कृपा को प्राप्त करनेवाला, दीक्षा-संस्कार द्वारा जिसके पाप नष्ट हो गए हैं, कुल (देवी-शक्ति) की पूजा में लगा हुआ मनुष्य ही कौल है, अन्य नहीं। जो कौलिक कुल (शक्ति) को नहीं देखता, नहीं पहचानता, उसकी पूजा नहीं करता, उसे धिक्कार है। उसका जीवन कौए के समान है। वे पुण्य-कर्मी योगी धन्य हैं, जिन्हें भाग्य-वश कुल का ज्ञान प्राप्त होता है। वे महात्मा वन्दनीय हैं, वे नर-श्रेष्ठ कृतार्थ हैं, जिनके मन में मेरा बताया कुल-ज्ञान उत्पन्न होता है। कुल-धर्म में प्रवेश करने से सभी प्रकार का प्रकाश (ज्ञान) प्राप्त होता है, सभी तीर्थों के स्नान और सभी यज्ञों के करने का फल मिलता है। जो सुकृती मनुष्य कुल-धर्म में प्रवेश करते हैं, वे फिर कभी माता के गर्भ में नहीं पड़ते हैं।

प्रसङ्ग से भी जो कोई 'कुल-कुल' कहता है, उसका वंश देवी के अनुग्रह से पवित्र हो जाता है। कुल-ज्ञाता को अन्य धर्मों की आवश्यकता नहीं रह जाती। कुल-निष्ठ कौलिक महात्माओं को अन्त-काल में मैं परम ज्ञान प्रदान करता हूँ, इसमें सन्देह नहीं।

दीर्घ परिश्रम और थोड़ा फल देनेवाले समय (मत) को लोग चाहते हैं। सुख से सभी फलों को देनेवाले कुल-धर्म को कौन छोड़ता है! वेद-शास्त्र से रहित होकर भी कुलज्ञ सर्वज्ञ होता है और वेद-शास्त्र-आगम का ज्ञाता भी यदि कुल को नहीं जानता, तो वह अज्ञ ही है।

हे देवि! तुम्हारे भक्त ही कुल की महिमा को जानते हैं, अन्य नहीं जानते, जिस प्रकार चकोर ही चन्द्रमा की छवि को जानते हैं, दूसरे नहीं जानते। कुलज्ञ ही कुल की कथा को सुनकर प्रसन्न होते हैं जैसे-ज्योत्स्ना से समुद्र ही वृद्धि को प्राप्त करता है, छोटी नदियाँ नहीं।

सार तत्त्व को जाननेवाले कौलिक लोग दूसरे धर्मों की ओर ध्यान नहीं देते, जैसे भौंरे अन्य पुष्पों की अपेक्षा मन्दार-पुष्प की ही सुगन्ध से आकृष्ट होते हैं। भगवान् शिव जिस चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करते हैं, उसे राहु निगल जाता है! इसी प्रकार सार-तत्त्व को जाननेवाले ही कुल-धर्म को सम्मान देते हैं, अन्य नहीं।

ज्ञानी लोग ही कुल-दर्शन को जानते हैं, अज्ञानी नहीं जानते। जैसे जल में मिले हुए दूध को पीना क्या हंस के समान बगुला पक्षी जानता है?

यह संसार शिव-शक्ति-मय है और इस संसार में कौल की प्रतिष्ठा है। अतः सबसे श्रेष्ठ कौल है।

छहों दर्शन मेरे अङ्ग-वेदात्मक शास्त्र कौलात्मक

छहों दर्शन मेरे अङ्ग हैं-दो पैर + दो हाथ + कुक्षि + शिर। इनमें जो भेद करता है, वह मानों मेरे अङ्ग का भेदन करता है। अतः वेदात्मक शास्त्र कौलात्मक ही समझो। सभी दर्शनों में एक देवता ही फलदायक है। इस कुल में मनुष्य को मुक्ति देनेवाला दैवत है।

प्रत्यक्ष फल देने से कुल-शास्त्र की प्रामाणिकता

लोक-धर्म के विरुद्ध होते हुए भी प्रत्यक्ष फल देने के कारण कुल-धर्म की प्रामाणिकता है। उसकी उपलब्धि के बल से सभी कुतर्की मारे गए क्योंकि परोक्ष को कौन जानता है कि किसका क्या होगा। जो प्रत्यक्ष फल देता है, वही उत्तम दर्शन है।

संसार की रक्षा-हेतु कुल-धर्म की निन्दा

इस कुल-धर्म को जानकर सभी मनुष्य मुक्त हो जाते हैं, यह देखकर मैंने कौल की निन्दा की है। तुम्हारी कृपा से रहित, कुल-ज्ञान के विरोधी, अज्ञानी पशुओं के लिए कुल-धर्म की निन्दा की गई है।

पापियों को कुल का ज्ञान नहीं

जिस मनुष्य के पिछले जन्मों के पाप-कर्मों के बन्धन अधिक हैं, उस पर गुरु की कृपा नहीं होती और न उसे कुल का ज्ञान मिलता है। सबको प्रकाशित करनेवाले सूर्य को जैसे अन्धे नहीं देख पाते, उसी प्रकार तुम्हारी माया से मोहित मनुष्य कुल को नहीं जान पाते। शैव, वैष्णव, सौर आदि दर्शनों को मनुष्य भक्ति के साथ नित्य भजते हैं, किन्तु उनका परिश्रम व्यर्थ जाता है और उन्हें वांछित फल नहीं मिलता। वेद-शास्त्र-आगमों में भोग और मोक्ष का एक ही साधन मेरा प्रिय तुम्हारा दर्शन बताया है, किन्तु मूढ़ लोग उसकी निन्दा करते हैं।

दुरात्माओं को भ्रमित करने हेतु पशु-शास्त्रों का प्रचार

हे देवि! पशुओं को मैंने करोड़ों शास्त्रों से भ्रमित कर रखा है। वे कुल-धर्म को नहीं जानते और व्यर्थ के ज्ञान का अभिमान करते हैं। सभी पशु शास्त्रों को मैंने ही दुरात्माओं को मुग्ध करने के लिए दूसरे स्वरूप को ग्रहण कर कहा है। महा-पाप के वशीभूत होकर उनमें वांछा उत्पन्न होती है। कोटि शत-कल्पों में भी उनसे सद्गति नहीं मिलती। पापात्मा लोग प्रेरित किए जाने पर भी कुल में नहीं आते और पुण्यात्मा लोग मना किए जाने पर भी कुल का ही अवलम्बन करते हैं।

कुल-धर्म से देवताओं को देवत्व-प्राप्ति

कुल-धर्म से देव-गण देवत्व को प्राप्त करते हैं। मुनि, योगीश्वरादि ने इसी से सिद्धि पाई है।

मिथ्या ज्ञानियों द्वारा कुल-धर्म की विडम्बना

पशु-व्रतों आदि में लगे हुए दम्भी लोग पृथ्वी पर सरलता से मिल जाते हैं, किन्तु जो कौल की ही सेवा करते हैं, वे महा-पुरुष बड़ी कठिनाई से मिलते हैं। मिथ्या तत्त्वार्थ को जाननेवाले मनुष्य बहुत हैं, किन्तु इस कुल-तत्त्व का ज्ञाता दुर्लभ है। जिस प्रकार रोग से व्याकुल कुछ मनुष्य महा-व्याधि को नष्ट करनेवाली दिव्य औषधि का सेवन नहीं करते अपितु उस व्याधि को बढ़ानेवाले अपथ्य का ही सेवन और दूषित औषधि का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार अज्ञ लोग जन्म से मृत्यु तक तुम्हारी दया से रहित होकर सदा सांसारिक कर्मों में लगे रहते हैं और संसार के बन्धन से छुड़ानेवाले कुल-धर्म का पालन नहीं करते। जिस प्रकार लोग व्यापारियों से जङ्गलों में उत्पन्न होनेवाली मिर्च आदि की याचना मोह-वश करते हैं और अमूल्य रत्नों को उनसे नहीं माँगते, उसी प्रकार तुम्हारी माया के वशीभूत हो मूर्ख लोग पशु-शास्त्रों और कर्म-बन्धन में डालनेवाले फलों के सम्बन्ध में पूछते रहते हैं और भुक्ति-मुक्ति रूपी फल को देनेवाले कुल-धर्म के सम्बन्ध में नहीं पूछते। जिस प्रकार हाथ में रखी हुई कस्तूरी, कर्पूर और मणि को वह मूर्ख नहीं पहचान पाता, जिसके मन में क्रमशः चन्दन, नमक और काँच पाने की इच्छा है, उसी प्रकार तुम्हारी कृपा से रहित व्यक्ति 'कौल' को पाकर भी उसे नहीं जान पाता। तुम्हारी माया से उत्पन्न मोह की महिमा अपार है, जो देवताओं को भी मुग्ध कर देता है।

प्रियतमा का मुख-दर्शन कर मद्य-पान और मांस-भोजन-पूर्वक जप करने से परम पद प्राप्त होता है। गुरु की दया से ही यह कुल-दर्शन मिलता है। तुम्हारे भक्त ही इस भुक्ति-मुक्ति-दायक दर्शन को जानते हैं, अन्य नहीं।

गुरूपदेश से रहित व्यक्ति अन्धकार में ही रहते हैं। ऐसे लोग स्वयं पहले से मुग्ध रहकर सभी लोगों को भ्रम में डालते हैं। कितने ही पापी लोग दुराचारी होकर कहा करते हैं कि स्वामी और सेवक का सम्बन्ध

कैसे सम्भव है। बहुत से ज्ञान का मिथ्या अभिमान करनेवाले अपनी बुद्धि से कौलिक धर्म की परम्परा-हीन कल्पना करते हैं। केवल मद्य-पान से यदि सिद्धि मिल जाती, तो सभी पापी मद्यप सिद्ध हो जाते। मांस खाने से ही यदि सद्गति मिल जाती, तो संसार के सभी मांसाहारी पुण्यात्मा हो जाते। केवल शक्ति के सम्भोग से ही यदि मोक्ष हो जाता, तो सभी स्त्री-सङ्ग करनेवाले लोग मुक्त हो जाते।

हे महादेवि! कुल-मार्ग की मैंने कभी निन्दा नहीं की है। जो आचार-रहित हैं, वे ही निन्दनीय हैं, अन्य नहीं। कौलिक धर्म का आचार मैंने बताया है। उसे छोड़कर भिन्न प्रकार से जो व्यवहार करते हैं, वे पण्डित अहम्मन्य मूर्ख हैं। कुल-मार्ग पर चलना खड्ग की धार पर चलने, बाघ की गरदन पकड़ने और सर्प को पहनने से भी अधिक कठिन है।

वेदादि में वृथा-पान की निन्दा

हे देवेशि! वृथा-पान को सुरा-पान कहते हैं। वेदादि में उसे महा-पाप बताया है। पशुओं के लिए मद्य-माँस का सूँघना, देखना, छूना मना है, किन्तु कौलिकों के लिए वे परम फल-दायक हैं।

द्विजातियों के लिए ग्यारह मद्य अग्राह्य

द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) के लिए ग्यारह प्रकार के मद्य अमेध्य होने के कारण अग्राह्य हैं। बारहवीं महा-मद्य सभी में उत्तम है और द्विजातियों द्वारा ग्राह्य है। अन्नों का मल होने से 'सुरा' पाप को उत्पन्न करती है। अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को सुरा-पान नहीं करना चाहिए।

सुरा आदि के देखने आदि का प्रायश्चित

सुरा के देखने मात्र से दोष होता है, उसे दूर करने के लिए सूर्य का दर्शन करे। उसे सूँघने से जो दोष होता है, उसे दूर करने के लिए तीन बार प्राणायाम करे और घुटने तक जल में प्रवेश कर दिन भर उपवास करे। मद्य को छू लेने पर प्रायश्चित्त की विधि यह है कि तीन रात तक नाभि के ऊपर जल में प्रवेश कर दिन में उपवास करे। जान-बूझकर सुरा-पान करने पर जिह्वा को दग्ध करने से मुख की शुद्धि होती है।

वृथा हिंसा करने में दोष

अपने स्वार्थ के लिए जो प्राणियों की विधि-रहित हिंसा करता है, वह उस पशु के शरीर में जितने रोएँ होते हैं, उतने दिनों तक घोर नरक में निवास करता है। मरने पर वह दुराचारी तिर्यग् योनि में जन्म पाता है।

आठ प्रकार के घातक (पशु-हिंसक)

१. पशु का अनुमान करनेवाला, २. पशु को विश्वास में लानेवाला, ३. पशु का वध करनेवाला, ४. पशु को खरीदनेवाला, ५. पशु को बेचनेवाला, ६. पशु का संस्कार करनेवाला, ७. पशु को लानेवाला और ८. पशु-मांस को खानेवाला—ये आठ प्रकार के 'घातक' कहे गए हैं।

तीन प्रकार के बध

धन के लिए बेचना, खाकर उपभोग करना और बँधे हुए पशु का बध करना—ये तीन प्रकार के 'बध' हैं।

विधि-पूर्वक ही पञ्च-मकार सेवनीय

मांस को देखने से सुरा-दर्शन के समान ही प्रायश्चित करना चाहिए। अतः मांस-मद्य का सेवन कभी अविधि-पूर्वक न करे।

विधि-पूर्वक सेवन करने से हे देवि! तुम शीघ्र प्रसन्न होती हो। अविधि-पूर्वक तिनके को भी न तोड़ना चाहिए। विधि-पूर्वक बैल या द्विज का भी वध करने से पाप नहीं होता।

कुल-धर्म के अनुकूल श्रुति के प्रमाण

अधिक कहने से क्या लाभ? एक तत्त्व की बात सुनो कि हे महा-देवि! जीवन्मुक्ति का सरल उपाय कुल-शास्त्रों में छिपा हुआ है, जो सोने में सुगन्ध के समान मोक्ष के अभिलाषियों के लिए उत्तम फल-रूप है। कुल के ज्ञाताओं में भी जो ऊर्ध्वाम्नाय से प्रसिद्ध हैं, उनका ज्ञान श्रेष्ठ है। हे पार्वति! सभी कुल-शास्त्रों को मैंने ही कहा है। अतः वे स्वतः-प्रमाण हैं, इसमें सन्देह नहीं। तर्क-वितर्क द्वारा उनका खण्डन नहीं करना चाहिए। देवताओं और पितरों के लिए समर्पित किया जानेवाला मद्य अमृत-स्वरूप हो जाता है और पुरुष-पशु को बलि देकर उसके मांस को विधि-वत् स्वर्ण-पात्र में रखकर प्रसाद-रूप में ग्रहण करने से अविलम्ब ही सर्व-पापों का नाश होकर तत्त्व-ज्ञान की उपलब्धि होती है।

हे अम्बिके! कुल का यह कुछ माहात्म्य मैंने संक्षेप में यहाँ कहा है। अब क्या सुनना चाहती हो?

***

तीसरा उल्लास : ऊर्ध्वाम्नाय और प्रासाद-परा-मन्त्र की महिमा

ऊर्ध्वाम्नाय सम्बन्धी प्रश्न

श्री देवी ने कहा—हे प्रभो! मैं सब धर्मों में उत्तम ऊर्ध्वाम्नाय, उसका मन्त्र और उसकी महिमा सुनना चाहती हूँ। आप उसे बताइए।

ऊर्ध्वाम्नाय आदि की अति गोपनीयता

ईश्वर बोले—हे देवि! सुनो!, जो तुमने पूछा है, उसे मैं बताऊँगा। उसके सुनने मात्र से देवता प्रसन्न होते हैं। मैंने इसे पहले कभी नहीं बताया है। तुम्हारे स्नेह से ऊर्ध्वाम्नाय को बताता हूँ, सुनो! वेद, शास्त्र, पुराण प्रकट करने योग्य हैं, किन्तु शैव और शाक्त आगम सभी रहस्य कहे गए हैं। कुल-शास्त्र तो रहस्य से भी रहस्य-पूर्ण है।

ऊर्ध्वाम्नाय-तत्त्व पूर्ण-ब्रह्मात्मक

हे अम्बिके! ऊर्ध्वाम्नाय का यह तत्त्व तो अति रहस्य-पूर्ण है क्योंकि यह पूर्ण-ब्रह्मात्मक परम तत्त्व है। इसे मैंने यत्न-पूर्वक गुप्त रखा है। अब प्रकाशित कर रहा हूँ।

पञ्च-मुखों से पञ्च-आम्नायों की उत्पत्ति

मैंने अपने पाँच मुखों से—१. पूर्वाम्नाय, २. पश्चिमाम्नाय, ३. दक्षिणाम्नाय, ४. उत्तराम्नाय और ५. ऊर्ध्वाम्नाय—ये पाँच आम्नाय कहे हैं। ये पाँचों मोक्ष-मार्ग के रूप में प्रसिद्ध हैं।

ऊर्ध्वाम्नाय की श्रेष्ठता

आम्नाय बहुत से हैं, किन्तु वे ऊर्ध्वाम्नाय के समकक्ष नहीं हैं, यह सत्यं है। इसमें विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। चार आम्नायों के जाननेवाले तो बहुत हैं, किन्तु ऊर्ध्वाम्नाय के तत्त्व को जाननेवाले बहुत कम ही लोग हैं।

देवता शक्ति और शिव के अंश से सम्भूत

प्रत्येक आम्नाय के असंख्य मन्त्र हैं, जो भुक्ति और मुक्ति के देनेवाले हैं तथा प्रत्येक आम्नाय के असंख्य उप-मन्त्र भी हैं, जो उसी प्रकार तत्त्व-प्रदायक हैं। संसार के कल्याण की इच्छा से मैंने ही उन सबको कहा है। उन सब मन्त्रों के देवता हम दोनों के अंशों से सम्भूत हैं और वे निर्दिष्ट फलों को देते हैं। सभी मन्त्रों को केवल मैं जानता हूँ, अन्य कोई नहीं जानता। मेरी कृपा से ही करोड़ों मनुष्यों में से कोई कुछ मन्त्रों को जान पाता है।

आम्नाय को जानने का फल

केवल एक आम्नाय को जो जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। फिर चार आम्नायों के ज्ञाता की क्या बात, वह साक्षात् शिव हो जाता है। चार आम्नायों के विशेष ज्ञान से भी श्रेष्ठ ऊर्ध्वाम्नाय है। अतएव यदि आत्म-सिद्धि की इच्छा है, तो उसी को जानना चाहिए।

ऊर्ध्वाम्नाय शब्द का अर्थ

सब धर्मों से ऊर्ध्व होने के कारण ऊर्ध्वाम्नाय श्रेष्ठ है। निम्न स्थित व्यक्ति को ऊर्ध्व-गामी करने से यह ऊर्ध्वाम्नाय कहलाता है। इसका तत्त्व उच्च स्तर का है, संसार-सागर को यह नष्ट करता है और ऊर्ध्व लोक इसकी सेवा करते हैं—अतएव यह ऊर्ध्वाम्नाय कहलाता है।

दृष्टान्त द्वारा ऊर्ध्वाम्नाय की श्रेष्ठता

हे देवेशि! ऊर्ध्वाम्नाय को मोक्ष का एक-मात्र साधन जानो। यह सब आम्नायों से अधिक फल देनेवाला और श्रेष्ठ है। जिस प्रकार सारे लोकों में सबसे अधिक पूज्य मैं हूँ, उसी प्रकार सभी आम्नायों में ऊर्ध्वाम्नाय श्रेष्ठ है। देवों में जैसे विष्णु, ज्योतियों में सूर्य, तीर्थों में काशी, नदियों में गङ्गा, पर्वतों में मेरु, वृक्षों में चन्दन, यज्ञों में अश्वमेध, पत्थरों में मणि, रसों में मधुरता, धातुओं में स्वर्ण, पशुओं में गाय, पक्षियों में हंस, आश्रमों में भिक्षु, वर्णों में ब्राह्मण, मनुष्यों में राजा, अङ्गों में शिर, सुगन्धियों में कस्तूरी और पुरियों में काञ्ची श्रेष्ठ है, वैसे ही सब धर्मों में ऊर्ध्वाम्नाय की श्रेष्ठता है।

ऊर्ध्वाम्नाय के ज्ञान का कारण

नाना जन्मों में उपार्जित अपार पुण्य-कर्मों का फल उदय होने से ऊर्ध्वाम्नाय का ज्ञान मिलता है, अन्यथा नहीं। लाखों मनुष्यों में वह व्यक्ति धन्य है, जो कुल-दर्शन अर्थात् शाक्त-दर्शन को जानता है। उन लाखों में कोई ही ऊर्ध्वाम्नाय को जानता है।

ऊर्ध्वाम्नाय गुरु-मुख से ही ज्ञेय

श्री गुरुदेव के मुख के बिना न तो वेदों, आगमों, शास्त्रों, पुराणों के विस्तृत अध्ययन से, न करोड़ों यज्ञों, तपों, तीर्थों, व्रतों से और न मन्त्रौषधि आदि अन्य उपायों से ऊर्ध्वाम्नाय का ज्ञान मिलता है। अतः ऊर्ध्वाम्नाय के अर्थ को जाननेवाले उन्हीं दयालु सर्व-गुण-सम्पन्न गुरुदेव की खोज करनी चाहिए और उनसे ऊर्ध्वाम्नाय को जानना चाहिए।

ऊर्ध्वाम्नाय-परायण की सर्व-जीवन्मुक्ति और कृतार्थता

हे देवि! जो मनुष्य ऊर्ध्वाम्नाय के तत्त्व को जान लेता है, वह अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त करता है, यह सर्वथा सत्य है। श्री गुरु के मुख से जो उचित प्रकार से ऊर्ध्वाम्नाय को अच्छी तरह जानता है, वह शास्त्रोक्त मार्ग से जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। वह सबका वन्दनीय, सद्गुरु, पूजनीय, दैवज्ञ मान्त्रिक,

सेवनीय, स्तुत्य, दर्शनीय, सात्विक, व्रती, तपस्वी, अनुष्ठाता पूजक, वेदागम-शास्त्रादि सब विद्याओं में विशारद, आचार्य, बुद्धिमान, यति, कौलिक, याज्ञिक, पूतात्मा, जापी, साधक, योगी, उत्तमा वीर और पुण्यात्मा, सर्वज्ञ सब कुछ होकर कृतार्थ हो जाता है। वह मुक्त होकर शिव-स्वरूप होता है। उसका वेश धन्य हो जाता है, उसकी माता धन्य होकर पुण्य-स्मरणीया होती है। उसका पिता कृतार्थ होता है और उसके पितरों की मुक्ति हो जाती है। उसके वंशज पुण्यवान् होते हैं और उसके सभी मित्र, बन्धु पवित्र हो जाते हैं।

ऊर्ध्वाम्नाय-परायण की प्रशंसा

ऊर्ध्वाम्नाय-परायण का स्मरण, कीर्तन, अभिवन्दन, सम्भाषण करने से राजसूय से भी अधिक फल मिलता है। जहाँ वह निवास करता है, वहाँ लक्ष्मी और विजय होती है। उस स्थान में नीरोगता, अन्नादि की बहुलता, सुन्दर वर्षा और शान्ति रहती है। अतः गुरु की प्रसन्नता से जो उत्तम मनुष्य ऊर्ध्वाम्नाय को वास्तव में जान लेता है, वह मुझे बहुत ही प्रिय होता है।.

आम्नायों के सृष्टि-रूपादि भेद

पूर्वाम्नाय सृष्टि-रूप है और दक्षिणाम्नाय स्थिति-रूप, पश्चिमाम्नाय संहार-रूप है और उत्तराम्नाय अनुग्रह-रूप है। दूसरे प्रकार से पूर्वाम्नाय मन्त्र-योग है और दक्षिणाम्नाय भक्ति-योग, पश्चिमाम्नाय कर्म-योग है और उत्तराम्नाय ज्ञान-योग है।

आम्नायों के सङ्केत-भेद

पूर्वाम्नाय के चौबीस सङ्केत कहे गए हैं। दक्षिणाम्नाय के सङ्केत पचीस कहे हैं। पश्चिमाम्नाय के सङ्केत बत्तीस हैं और उत्तराम्नाय में छत्तीस सङ्केत कहे गए हैं।

ऊर्ध्वाम्नाय में सङ्केतों का अभाव

हे कुल-नायिके! ये ऊर्ध्वाम्नाय में नहीं हैं। साक्षात् ज्ञान-स्वरूप होने से इस आम्नाय में कुछ भी कर्म शेष नहीं रहता। ऊर्ध्वाम्नाय का माहात्म्य मैं जानता हूँ, अन्य नहीं और मेरे स्नेह से तुम जानती हो, यह सत्य है। ऊर्ध्वाम्नाय की यह कुछ महिमा मैंने संक्षेप में यहाँ कही है।

शिव-शक्त्यात्मक प्रासाद-मन्त्र की महिमा

अब उत्तम मन्त्र का माहात्म्य कहता हूँ। ऊर्ध्वाम्नाय में 'श्री प्रासाद-परा' मन्त्र अधिष्ठित है, जो हम दोनों का परम स्वरूप है। उसे जो जानता है, वह स्वयं शिव हो जाता है।

प्रासाद-मन्त्र में सारा जगत्

शिव से कृमि तक सभी प्राणियों में प्राण के मार्ग से निःश्वास-उच्छवास के रूप में यह मन्त्र विद्यमान है। जैसे हवा के बिना आकाश में बादल नहीं ठहरते, वैसे परा-प्रासाद-मन्त्र के बिना यह लोक नहीं ठहर सकता। परा-प्रासाद-मन्त्र से यह चराचर जगत् व्याप्त है। तत्त्वतः ये दोनों अभिन्न हैं, उसी प्रकार जैसे ताल-वन्त में वायु, बीज में अंकुर, तिल में तैल, अग्नि में उष्णता, सूर्य में प्रकाश, चन्द्रमा में चाँदनी, लकड़ी में अग्नि, पुष्प में गन्ध, जल में द्रवता, शब्द में अर्थ, शिव में शक्ति, दूध में घी, फल में स्वाद, शक्कर में मिठास, चन्दन में ठण्डक, मन्त्र में निग्रह और अनुग्रह, मूर्ति में देवता, दर्पण में प्रतिबिम्ब और वायु में गति। प्रासाद-मन्त्र में यह प्रपञ्च उसी प्रकार स्थित है, जिस प्रकार वट-बीज में सूक्ष्म रूप से वृक्ष निहित है। इस परा-प्रासाद-मन्त्र में ब्रह्माण्ड उसी प्रकार स्थित है।

प्रासाद-मन्त्र से असङ्गत मन्त्र निष्फल

हे कुलेश्वरि! जिस प्रकार अच्छे पके हुए, रसीले पदार्थों में नमक के बिना खानेवाले को स्वाद नहीं

मिलता, उसी प्रकार जो मन्त्र परा-प्रासाद-मन्त्र से सङ्गत नहीं हैं, वे मन्त्र-शक्ति से रहित होकर फल नहीं देते। श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र को प्रयत्न करके गुप्त रखना चाहिए। दर्शनाम्नायों के भेदों से उत्पन्न सभी पुराणार्थों, मन्त्रों को और विविध शास्त्रों को मैं जानता हूँ। इन्द्रादि देवता तुम्हारी माया से मोहित होकर विविध शास्त्रों में भ्रमित होते रहते हैं और संसार के कष्टों में पड़कर जन्म लेते व मरते रहते हैं, किन्तु श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र का गान नहीं करते। तुम्हारी माया से मोहित होकर वे मोक्ष को नहीं प्राप्त करते।

मेरे स्वरूप श्री गुरुदेव में जिसकी दृढ़ भक्ति होती है, वही श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र को जानकर मुक्त होता है। सहस्त्रों पूर्व-जन्मों में शैवादि समयों (धर्मों) का पालन करते हुए गुरु की आज्ञा से चार आम्नायों के मन्त्रों की जो उपासना करता है, वह पाप-शरीर से मुक्त होकर शुद्धात्मा और गुरु का प्रिय होता है। वही श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र को जान पाता है, दूसरा नहीं।

देव-मुनि आदि भी प्रासाद-मन्त्र के जप-कर्त्ता

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र सहित इन्द्रादि श्रेष्ठ देवता, वसु, रुद्रार्क, दिक्-पाल, मनु, चन्द्रादि और मार्कण्डेय, वसिष्ठ आदि मुनि, सनकादि योगी, शुकादि जीवन्मुक्त तथा यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर आदि अमित फल-दायक एवं प्रभावशाली श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र को पाकर आज भी जपते रहते हैं।

परा-प्रासाद-मन्त्र के जप का फल

परा-प्रासाद-मन्त्र का जप करनेवाले राज्य, स्वर्ग, मोक्ष और ब्रह्मा-इन्द्र-रुद्र-विष्णु के पद से भी आगे बढ़ जाते हैं। परा-प्रासाद-मन्त्र का ज्ञाता सर्व-कर्म-विहीन होते हुए भी सहज ही जिस गति को प्राप्त करता है, उसे कोई भी धार्मिक व्यक्ति प्राप्त नहीं कर पाता। उसके घर में चिन्तामणि, कामधेनु और कल्पतरु सदैव विद्यमान रहते हैं। परा-प्रासाद का जप करनेवालों की सेवा साक्षात् कुबेर करते हैं। जिस प्रकार दिव्य मणि के स्पर्श से लौह स्वर्ण बन जाता है, उसी प्रकार परा-प्रासाद के जप से पशु पशुपति हो जाता है। श्री प्रासाद-परा-मन्त्र को जो वस्तुतः जानता है, वह मुझे और तुम्हें जान जाता है और हम दोनों का अति प्रिय हो जाता है।

प्रासाद-मन्त्र का ज्ञाता चाण्डाल भी देव-स्थापना का अधिकारी

परा-प्रासाद-मन्त्र का ज्ञाता चाण्डाल भी मूर्ति आदि में देवता की स्थापना करने का अधिकारी होता है, इसमें सन्देह नहीं। परा-प्रासाद नामक मन्त्र मात्र को जो जानता है, वह चाण्डाल भी मुक्त होता है। फिर उसके विधान के जाननेवाले की क्या प्रशंसा की जाए। परा-प्रासाद-मन्त्र का ज्ञाता जो करता है, जो चाहता है और जो बोलता है, वह सब हे महेशानि! तप, ध्यान और जप-स्वरूप ही होता है। दीक्षा-पूर्वक क्रम-युक्त जो परा-प्रासाद-मन्त्र को जानता है, वह 'मैं' ही हूँ, इसमें सन्देह नहीं। चराचर सहित चौदहों भुवन परा-प्रासाद-मन्त्र जाननेवाले के शरीर में सदैव विद्यमान रहते हैं। परा-प्रासाद-मन्त्र जाननेवाला जहाँ रहता है, वह स्थान और उसके स्थान के चारों ओर दश योजन तक का स्थान 'दिव्य-क्षेत्र' माना जाता है। हे कुल-नायिके! सुर और असुर परा-प्रासाद-मन्त्र के अर्थ का तत्त्व जाननेवाले की वन्दना करते हैं, फिर मनुष्यों का क्या कहना। परा-प्रासाद-मन्त्र जाननेवाला जहाँ रहता है, वह स्थान मुनियों और देवताओं द्वारा मेरा 'सिद्ध-क्षेत्र' माना जाता है।

परा-प्रासाद-मन्त्र के ज्ञाता को शैवादि सभी मन्त्रों का ज्ञान

परा-प्रासाद-मन्त्र का ज्ञाता शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत और चन्द्र के सभी मन्त्रों को जानता है। श्री प्रासाद-परा-मन्त्र जिसके जिह्वाग्र में रहता है, उसके दर्शन मात्र से चाण्डाल भी मुक्त हो जाता है।

परा-प्रासाद-मन्त्र सब फलों का देनेवाला

चाहे ब्राह्मण हो या अन्त्यज, चाहे पवित्र हो या अपवित्र–जो परा-प्रासाद का जप करनेवाला है, वह निस्सन्देह मुक्त है। चाहे चलते हुए जप करे या बैठे हुए, चाहे जगते हुए जप करे या सोते हुए, यह परा-प्रासाद-मन्त्र हे देवेशि! कभी निष्फल नहीं होता। प्रचलित सहस्त्रों मन्त्रों में से प्रत्येक मन्त्र पर्याप्त विलम्ब से और केवल एक ही फल प्रदान करता है। यह मन्त्र-राज शीघ्र ही सर्व फलों को प्रदान करता है। परा-प्रासाद-मन्त्र सब मन्त्रों में श्रेष्ठ है। चाहे ज्ञान-पूर्वक भजन करे या अज्ञान-पूर्वक, यह मन्त्र सदैव अभीष्ट प्रदान करता है।

शचीन्द्र आदि द्वन्द्व शिव-शक्त्यात्मक

शची और इन्द्र, रोहिणी और चन्द्र, स्वाहा और अग्नि, प्रभा और सूर्य, लक्ष्मी और नारायण, सरस्वती और ब्रह्मा, रात्रि और दिन, अग्नि और चन्द्र, विन्दु और नाद, प्रकृति और पुरुष, आधार और आधेय, भोग और मोक्ष, प्राण और अपान, शब्द और अर्थ, विधि और निषेध, सुख और दुःख इत्यादि जितने द्वन्द्व समस्त लोकों में दिखाई या सुनाई देते हैं, वे सब हे कुलेश्वरि! हम दोनों के ही स्वरूप हैं। पुरुष और स्त्री के समस्त रूप हम दोनों के ही अंश हैं।

परा-प्रासाद-मन्त्र सर्वात्मक

अतः यह परा-प्रासाद-मन्त्र सर्वात्मक है। हे देवि! यह अरूप, भावना-गम्य, परंब्रह्म, निष्कल, निर्मल, नित्य, निर्गुण, आकाश-वत् अनन्त अव्यय और मन-वाणी से परे है। इस परा-प्रासाद का अर्थ केवल ध्यान से ही प्रकाशित होता है। इसी से हे देवि! इस मन्त्र का नाम 'परा-प्रासाद' है। यह पर-तत्त्व का स्वरूप है; सत्-चित् -आनन्द इसके लक्षण हैं; शिव-शक्ति से यह ओत-प्रोत है; भुक्ति और मुक्ति का यह देनेवाला है; सकर्मा होते हुए भी यह निष्कर्म है; सगुण होते हुए भी निर्गुण है–अतएव यह श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र सब मन्त्रों का शिरोमणि है। इसका जप करने से भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं, इसमें सन्देह नहीं।

श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र की प्रशंसा

अधिक कहने से क्या, हे प्रिये! सब बातों का सार सुनो। श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र के समान कोई मन्त्र नहीं है। यही परम ज्ञान है, यही परम तप, परम ध्यान, परम अर्चन, परा दीक्षा और परम जप है। यही परम तत्त्व है, यही परम व्रत, परम यज्ञ, परम श्रेय, परम फल, परम ब्रह्म और परा गति है। यही परम गुह्य है, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं। इस श्रेष्ठ मन्त्र को ऐसा मान कर उसमें सदा निष्ठा रखे।

श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र की जप-विधि

आगमोक्त विधि से क्रम-पूजा-सहित श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे। इससे ब्रह्म-हत्या आदि पाँच महा-पापों से मुक्त हो जाता है। दो सौ बार जो जप करता है, वह पिछले चौरासी लाख योनियों के अपने विविध जीवनों की बाल्य, यौवन, वृद्धावस्थाओं में, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति दशाओं में, मन, वचन, कर्म से ज्ञान-अज्ञान-पूर्वक किए गए समस्त पाप-समूहों से छुटकारा पा जाता है, इसमें सन्देह नहीं। जो तीन सौ बार जप करता है, वह समस्त प्रकार के यज्ञों, दानों, व्रतों और तीर्थों का पुण्य-फल प्राप्त करता है। चार सौ बार जो जप करता है उसके द्वार पर अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ सब सिद्धियों सहित सेवा करती हैं और जो भी उसकी मनोकामना होती है, वह पूर्ण होती है। धर्मार्थ-काम-मोक्ष साक्षात् उसके हाथ में स्थित हैं और सालोक्य आदि चारों प्रकार की मुक्ति वह प्राप्त करता है। जो पाँच सौ बार जप करता है, उसके फल का वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ।

श्रीपरा-प्रासाद-मन्त्र भुक्ति एवं मुक्ति-दायक

अतएव भुक्ति एवं मुक्ति पाने के लिए हे कुल-नायिके! सब प्रयत्न करके, सब अवस्थाओं में, सदैव श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र का जप करना चाहिए।

गुरु से अधिक कोई तत्त्व नहीं है, न शिव से अधिक कोई दैवत है। वेद से अधिक कोई विद्या नहीं है, न कौल के समान कोई दर्शन। न कुल से अधिक कोई ज्ञान है, न ज्ञान से अधिक कोई सुख। न अष्टाङ्ग से अधिक कोई पूजा है, न मोक्ष से अधिक कोई फल। यह सर्वथा सत्य है।

श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र का माहात्म्य मैं कोटि-शत कल्पों में भी नहीं कह सकता। जैसे पर्वत का सरसों बराबर और सागर का बालू के कण-समान, वैसे ही मन्त्र की कुछ महिमा मैंने तुम्हें बताई है।

इस प्रकार हे देवि! ऊर्ध्वाम्नाय और श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र का माहात्म्य मैंने तुम्हें बताया। अब तुम क्या सुनना चाहती हो?

***

चौथा उल्लास : प्रासाद-परा-मन्त्र एवं षोढा-न्यास

श्री देवी ने कहा–हे ईशान! मैं श्री प्रासाद-परा-मन्त्र को सुनना चाहती हूँ। उस मन्त्र-राज को न्यास-ध्यान आदि के सहित बताइए।

ईश्वर बोले–हे देवि! सुनो, जो तुमने पूछा है, उसे मैं कहूँगा। उसके सुनने मात्र से शिव-स्वरूप होता है। इसके पूर्व यह मन्त्र मैंने किसी से नहीं कहा है। तुम्हारे स्नेह से आज कहता हूँ, सुनो।

श्री प्रासाद-परा-मन्त्र का उद्धार

'अनन्त-चन्द्र-भुवनमिन्दु-विन्दु-युगान्वित:' अर्थात् अनन्त-चन्द्र' है नाद-विन्दु (ँ), 'भुवन' है औ-कार, 'विन्दु' है ह-कार और 'बिन्दु-युग' है स-कार। इस प्रकार श्री प्रासाद-परा-मन्त्र 'हसौं' सिद्ध हुआ, जो भुक्ति-मुक्ति-रूपी फल-दायक है। श्री परा-प्रासाद मन्त्र हे कुलेश्वरि! सादि अर्थात् 'स्हौं' कहा गया है।

प्रासाद-मन्त्र की शब्द-व्यारव्या

प्रकाशानन्द-स्वरूप होने से, प्रत्यक्ष फल देने से, प्रसन्न-चित्त से वशीभूत होने से, प्रसिद्ध अर्थ का निरूपण करने से, प्राक्तन पापों की शान्ति करने से, प्रपन्न (शरणागत) की आर्ति (दु:ख) को नष्ट करने से और शीघ्र प्रसन्न होने से यह मन्त्र 'प्रासाद' कहा गया है। पर-तत्त्व का स्वरूप होने से, परमार्थ का प्रकाश करने से, परमानन्द देने से, परम-धर्म का निदर्शक होने से, परोक्ष फल को देने से, परम-ऐश्वर्य का कारण होने से, सब मन्त्रों से परे (श्रेष्ठ) होने से यह मन्त्र 'परा' कहा गया है। हे देवि! यह कुल-मन्त्र है। अब इसका न्यास सुनो।

न्यास के पूर्व-कर्तव्य का निरूपण

पहले प्रात:काल उठकर गुरुदेव का ध्यान करे। फिर एक बार मूल-मन्त्र का स्मरण कर शौचादि से निवृत्त हो। तब मुख-शोधन, स्नान, सन्ध्या, तर्पण करे। एकान्त में द्वार-पूजा, तीनों विघ्नों का उत्सारण

(निवारण) करे पूजा-स्थान में प्रवेश कर आसन पर बैठे। फिर देवी-पूजा के पूर्व ध्यान, शिवादि गुरु की वन्दना, आसन-शोधन और गणपति-क्षेत्रपाल की वन्दना करे। तदनन्तर गुरु-पादुका-मन्त्र का स्मरण कर दीपनाथ का अर्चन करे। फिर कर और षडङ्गों का शोधन, प्राणायाम, दिग्बन्धन कर दोनों अङ्ग-न्यास और दस प्रकार के मातृका न्यास (१ अन्तर्मातृका, २-४ सृष्टि-स्थिति—संहार—ये तीन बहिर्मातृका, ५ कला-मातृका, ६ श्रीकण्ठ-मातृका, ७ केशव-मातृका ८ लज्जा-बीज-मातृका, ९ रमा-बीज-मातृका और १० काम-बीज-मातृका) करे। तब श्री परा-प्रासाद-मन्त्र का ऋष्यादि न्यास करे। यथा—

श्री परा-प्रासाद-मन्त्र का ऋष्यादि-न्यास

विनियोग—ॐ अस्य श्रीपरा-प्रासाद-मन्त्रस्य पर-शम्भुः ऋषिः, अव्यक्ता गायत्री छन्दः, सर्व-मन्त्रेश्वरी-परा-देवता, ह्सां स्हां बीजं, ह्सीं स्हीं शक्तिः, ह्सूं स्हूं कीलकं, सर्व-मन्त्रेश्वरी-परा-देवता-प्रसाद-सिद्ध्यर्थे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—पर-शम्भु-ऋषये नमः शिरसि। अव्यक्ता-गायत्री-छन्दसे नमः मुखे। सर्व-मन्त्रेश्वरी-परा-देवतायै नमः हृदि। ह्सां स्हां बीजाय नमः गुह्ये। ह्सीं स्हीं शक्तये नमः नाभौ। ह्सूं स्हूं कीलकाय नमः लिङ्गे। सर्व-मन्त्रेश्वरी-परा-देवता-प्रसाद-सिद्ध्यर्थे विनियोगाय नमः पादयोः।

कर-न्यास—ह्सां स्हां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ह्सीं स्हीं तर्जनीभ्यां नमः। ह्सूं स्हूं मध्यमाभ्यां नमः। ह्सैं स्हैं अनामिकाभ्यां नमः। ह्सौं स्हौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ह्सः स्हः कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः।

षडङ्ग-न्यास—ह्सां स्हां हृदयाय नमः। ह्सीं स्हीं शिरसे स्वाहा। ह्सूं स्हूं शिखायै वषट्। ह्सैं स्हैं कवचाय हुं। ह्सौं स्हौं नेत्र-त्रयाय वौषट्। ह्सः स्हः अस्त्राय फट्।

अष्ट-षोढा-न्यास

मूर्ति-न्यास—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौं स्हौं हों ईशानाय नमः—अंगुष्ठयोः। ॐ-६ हें तत्पुरुषाय नमः—तर्जन्योः। ॐ-६ हुं अघोराय नमः—मध्यमयोः। ॐ-६ हिं वामदेवाय नमः—अनामिकयोः। ॐ-६ हं सद्योजाताय नमः—कनिष्ठिकयोः।

इसी प्रकार क्रमशः मूर्धा, मुख, हृदय, गुह्य और पाद-देश में क्रमशः अंगुष्ठ, तर्जनी आदि अँगुलियों से न्यास करे।

तब उक्त क्रम से क्रमशः ऊर्ध्व, प्राक्, दक्षिण, उदीच्य और पश्चिम मुखों में क्रमशः अंगुष्ठ, तर्जनी आदि अँगुलियों से न्यास करे।

तदनन्तर 'ह्सां ह्सीं' इत्यादि से षडङ्ग-न्यास कर 'स्हां स्हीं' इत्यादि से भी षडङ्ग-न्यास करे। इसके बाद निम्न प्रकार षडङ्ग-न्यास करे—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौं स्हौं सर्वज्ञाय नमः—अंगुष्ठयोः। ॐ-६ अमृते तेजोमालिनि

नित्य-तृप्ताय नमः तर्जन्योः । ॐ-६ ब्रह्म-शिरसे स्वाहा ज्वलित-शिखि शिखा-यानादि-बोधाय नमः मध्यमयोः । ॐ-६ वज्रिणे वज्र-हस्ताय स्वतन्त्राय नमः अनामिकयोः । ॐ-६ सौं वौं ह्रौं नित्यमलुप्त-शक्तये नमः कनिष्ठिकयोः । ॐ-६ श्रीं श्लीं पशुं हुं फट् नित्यमनन्त-शक्तये नमः करतलयोः ।

इसी क्रम से हृदयादि षडङ्गों में भी न्यास करे। अब अड़तीस कलाओं का न्यास करे। सब मन्त्रों के पूर्व 'ॐ' लगा ले। पहले समुष्टि अंगुष्ठ से न्यास करे—

ॐ ईशानः सर्व-विद्यानां शशिन्यै नमः ऊर्ध्व-वक्त्रे। ईश्वरः सर्व-भूतानां अङ्गदायै नमः पूर्व-वक्त्रे। ब्रह्माधि-पतिर्ब्रह्मणोऽधि-पतिर्ब्रह्मेष्टदायै नमः दक्ष-वक्त्रे। ब्रह्मा शिवो मे अस्तु मरीच्यै नमः उत्तर-वक्त्रे । सदाशिवोम् अंशु-मालिन्यै नमः पश्चिम-वक्त्रे।

अब अंगुष्ठ-तर्जनी को मिलाकर उनसे न्यास करे—

तत्पुरुषाय विद्महे शान्त्यै नमः पूर्व-वक्त्राधः। महादेवाय धीमहि विद्यायै नमः दक्षिण-वक्त्राधः । तन्नो रुद्रः प्रतिष्ठायै नमः उत्तर-वक्त्राधः। प्रचोदयात् निवृत्यै नमः पश्चिम-वक्त्राधः ।

अंगुष्ठ-मध्यमा को मिलाकर उनसे न्यास करे—

अघोरेभ्यः तमायै नमः हृदि । अथ घोरेभ्यो मोहायै नमः ग्रीवायां । घोर-क्षमायै नमः दक्षांसे । घोरतरेभ्यो निद्रायै नमः वामांसे। सर्वतः शर्व-व्याध्यै नमः नाभौ । सर्वेभ्यो मृत्यवे नमः कुक्षौ। नमस्ते अस्तु क्षुधायै नमः पृष्ठे । रुद्र-रूपेभ्यः तृष्णायै नमः वक्षसि ।

अंगुष्ठ-अनामा को मिलाकर उनसे न्यास करे—

वामदेवाय नमो रजायै नमः गुह्ये । ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रक्षायै नमः लिंगे। रुद्राय नमो रत्यै नमः दक्षोरौ । कालाय नमो मालिन्यै नमः वामोरौ । कल-विकरणाय नमः काम्यायै नमः दक्ष-जानुनि । विकरणाय नमः शशिन्यै नमः वाम-जानुनि । बल-विकरणाय नमः क्रियायै नमः दक्ष-जंघायां । विकरणाय नमः वृद्ध्यै नमः वाम-जंघायां । बलाय नमः स्थिरायै नमः दक्ष-स्फिचि । बल-प्रमथनाय नमः रात्र्यै नमः वाम-स्फिचि । सर्व-भूत-दमनाय नमो भ्रामिण्यै नमः कट्यां । मनोन्मनाय नमः मोहिन्यै नमः दक्ष-पार्श्वे। उन्मनाय नमो जरायै नमः वाम-पार्श्वे ।

अंगुष्ठ-कनिष्ठा को मिलाकर उनसे न्यास करे—

सद्योजातं प्रपद्यामि सिद्ध्यै नमः दक्ष-पाद-तले। सद्योजाताय वै नमः ऋद्ध्यै नमः वाम-पाद-तले। भवे लक्ष्म्यै नमः दक्ष-हस्त-तले। भवे धृत्यै नमः वाम-हस्त-तले। नाति-भवे मेधायै नमः नासिकायां । भवस्व माम् प्रज्ञायै नमः शिरसि । ॐ भव-प्रभायै नमः दक्ष-बाहौ । उद्भवाय नमः सुधायै नमः वाम-बाहौ ।

महा-षोढा-न्यास

इसके बाद देवता-भाव की सिद्धि के लिए 'महा-षोढा' नामक न्यास करे। यह न्यास जिस किसी को न बताना चाहिए। १ प्रपञ्च, २ भुवन, ३ मूर्ति, ४ मन्त्र, ५ दैवत और ६ मातृका-इन ६ न्यासों से सम्बन्धित 'महा-षोढा-न्यास' सब न्यासों में श्रेष्ठ है। हे परमेशानि! पहले 'प्रपञ्च-न्यास' बताता हूँ—

१ प्रपञ्च-न्यास

निम्न-लिखित प्रत्येक मन्त्र के आदि में 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः' और अन्त में 'स्हौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ' जोड़कर न्यास करे। यथा—

अं प्रपञ्च-रूपायै श्रियै नमः शिरसि। आं द्वीप-रूपायै मायायै नमः मुख-वृत्ते। इं जलधि-रूपायै कमलायै नमः दक्ष-नेत्रे। ईं गिरि-रूपायै विष्णु-वल्लभायै नमः वाम-नेत्रे। उं पत्तन-रूपायै पद्म-धारिण्यै नमः दक्ष-कर्णे। ऊं पीठ-रूपायै समुद्र-तनयायै नमः वाम-कर्णे। ऋं क्षेत्र-रूपायै लोक-मात्रे नमः दक्ष-नासा-पुटे। ॠं वन-रूपायै कमल-वासिन्यै नमः वाम-नासा-पुटे। लृं आश्रम-रूपायै इन्दिरायै नमः दक्ष-गण्डे। ॡं गुहा-रूपायै मायायै नमः वाम-गण्डे। एं नदी-रूपायै रमायै नमः ऊर्ध्वोष्ठे। ऐं चत्वर-रूपायै पद्मायै नमः अधरोष्ठे। ओं उद्भिज-रूपायै नारायण-प्रियायै नमः ऊर्ध्व-दन्त-पंक्तौ। औं स्वेदज-रूपायै सिद्धि-लक्ष्म्यै नमः अधो-दन्त-पंक्तौ। अं अंडज-रूपायै राज-लक्ष्म्यै नमः जिह्वा-मूले। अः जरायुज-रूपायै महा-लक्ष्म्यै नमः जिह्वाधः।

कं लव-रूपायै आर्यायै नमः दक्ष-बाहु-मूले। खं त्रुटि-रूपायै उमायै नमः दक्ष-कूर्परे। गं कला-रूपायै चण्डिकायै नमः दक्ष-मणि-बन्धे। घं काष्ठा-रूपायै दुर्गायै नमः दक्षांगुलि-मूले। ङं निमेष-रूपायै शिवायै नमः दक्षांगुल्यग्रे।

चं श्वास-रूपायै अपर्णायै नमः वाम-बाहु-मूले। छं घटिका-रूपायै अम्बिकायै नमः वाम-कूर्परे। जं मुहूर्त-रूपायै सत्यै नमः वाम-मणि-बन्धे। झं प्रहर-रूपायै ईश्वर्यै नमः वामांगुलि-मूले। ञं दिवस-रूपायै शाम्भव्यै नमः वामांगुल्यग्रे।

टं सन्ध्या-रूपायै ईशान्यै नमः दक्ष-पाद-मूले। ठं रात्रि-रूपायै पार्वत्यै नमः दक्ष-जंघायाम्। डं तिथि-रूपायै सर्व-मङ्गलायै नमः दक्ष-गुल्फे। ढं वार-रूपायै दाक्षायण्यै नमः दक्ष-पादांगुलि-मूले। णं नक्षत्र-रूपायै हैमवत्यै नमः दक्ष-पादांगुल्यग्रे।

तं योग-रूपायै महा-मायायै नमः वाम-पाद-मूले। थं करण-रूपायै माहेश्वर्यै नमः वाम-जंघायाम्। दं पक्ष-रूपायै मृडान्यै नमः वाम-गुल्फे। धं मास-रूपायै रुद्राण्यै नमः वाम-पादांगुलि-मूले। नं राशि-रूपायै शर्वाण्यै नमः वाम-पादांगुल्यग्रे।

पं ऋतु-रूपायै परमेश्वर्यै नमः दक्ष-कुक्षौ। फं अयन-रूपायै काल्यै नमः वाम-कुक्षौ। बं वत्सर-रूपायै कात्यायन्यै नमः पृष्ठ-वंशे। भं युग-रूपायै गौर्यै नमः नाभौ। मं प्रलय-रूपायै भवान्यै नमः हृदये।

यं पृथिव्यप्-तेजो-वाय्वाकाशाख्य-पञ्च-भूतरूपायै ब्राह्मयै नमः दक्षांसे । रं शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धाख्य-पञ्चतन्मातृ-रूपायै वागीश्वर्यै नमः वामांसे । लं वाक्-पाणि-पाद-पायूपस्थाख्य-पञ्च-कर्मेन्द्रिय-रूपायै वाण्यै नमः अपर-गले । वं श्रोत्र-त्वक्-चक्षुर्जिह्वा-घ्राणाख्य-पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय-रूपायै सावित्र्यै नमः दक्ष-कक्षे । शं प्राणापान-व्यानोदान-समानाख्य-पञ्च-प्राण-रूपायै सरस्वत्यै नमः वाम-कक्षे । षं सत्त्व-रज-तमाख्य-गुण-त्रय-रूपायै गायत्र्यै नमः हृदयादि-दक्ष-पाणि-पर्यन्तं । सं मनो-बुद्ध्यहङ्कार-चित्ताख्यान्तःकरण-चतुष्टय-रूपायै वाक्-प्रदायै नमः हृदयादि-वाम-पाणि-पर्यन्तं । हं जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीयावस्था-चतुष्टय-रूपायै शारदायै नमः हृदयादि-दक्ष-पादान्तं । ळं त्वगसृग्मांस-मेदोऽस्थि-मज्जा-शुक्राख्य-सप्त-धातु-रूपायै भारत्यै नमः हृदयादि-वाम-पादान्तं । क्षं वात-पित्त-श्लेष्माख्य-दोष-त्रय-रूपायै विद्यात्मिकायै पञ्च-भूत-व्यापिकाधीश्वर्यै नमः हृदयादि-भ्रू-युगान्तं । अं...क्षं मूलं सकल-प्रपञ्च-रूपायै पराम्बा-देव्यै नमः सर्वाङ्गे व्यापकं ।

२ भुवन-न्यास

निम्न-लिखित प्रत्येक मन्त्र के आदि में 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः' जोड़कर न्यास करे । यथा—

अं आं इं अतल-लोक-निलय-शत-कोटि-गुह्याख्य-योगिनी-देवता-युताधार-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः पादयोः । ईं उं ऊं वितल-लोक-निलय-शत-कोट्यति-गुह्य-योगिनी-मूल-देवता-युतानन्त-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः गुल्फयोः । ऋं ॠं लृं सुतल-लोक-निलय-शत-कोट्यति-गुह्य-योगिनी-मूल-देवता-युताचिन्त्य-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः जंघयोः । ॡं एं ऐं महा-तल-लोक-निलय - शत - कोटि - महा-गुह्याख्य-योगिनी-मूल-देवता-युत-स्वातंत्र्य-शक्त्यंबा-देव्यै नमः जान्वोः । ओं औं तलातल-लोक-निलय-शत-कोटि-रहस्य-योगिनी-मूल-देवता-युत-परम-गुह्येच्छा-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः ऊर्वोः । अं अः रसातल-लोक-निलय-शत-कोटि-रहस्य-योगिनी-मूल-देवता-युत-ज्ञान-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः गुह्ये । कं-५ पाताल-लोक-निलय-शत-कोटि-रहस्याति-रहस्य-योगिनी-मूल-देवता-युत-क्रिया-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः मूलाधारे । चं-५ भूर्लोक-निलय-शत-कोट्यति-रहस्य-योगिनी-मूल-देवता-युत-श्रीडाकिनी-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः स्वाधिष्ठाने । टं-५ भुवर्लोक-निलय-शत-कोटि-महा-रहस्य-योगिनी-मूल-देवता-युत श्रीराकिणी-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः नाभौ । तं-५ स्वर्लोक-निलय-शत-कोटि-परम-रहस्य-योगिनी-मूल-देवता-युत-लाकिनी-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः हृदये । पं-५ महर्लोक-निलय-शत-कोटि-गुप्त-योगिनी-मूल-देवता-युत-श्रीकाकिनी-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः तालु-मूले । यं-४ जन-लोक-निलय-शत-कोटि-गुप्ततर-योगिनी-मूल-देवता-युत-श्रीशाकिनी-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः आज्ञायाम् । शं-४ तपोलोक-निलय-शत-कोट्यति-गुप्त-योगिनी-मूल-देवता - युत-हाकिनी-शक्त्यम्बा-देव्यै

नमः ललाटे । ळं क्षं सत्य-लोक-निलय-शत-कोटि-महा-गुप्त - योगिनी-मूल - देवता-युत-याकिनी-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः ब्रह्मरन्ध्रे । अं...क्षं चतुर्दश-भुवनाधिपायै श्रीपराम्बा-देव्यै नमः सर्वाङ्गे व्यापकं ।

३ मूर्ति-न्यास

निम्न-लिखित प्रत्येक मन्त्र के आदि में पूर्ववत् 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः' जोड़कर न्यास करे। यथा—

अं केशवाक्षर-शक्तिभ्यां नमः ललाटे । आं नारायणाद्याभ्यां नमः दक्ष-मुखे इं माधवेष्टदाभ्यां नमः दक्ष-स्कंधे । ईं गोविन्देशानीभ्यां नमः दक्ष-कुक्षौ । उं विष्णूग्राभ्यां नमः दक्षिणोरौ । ऊं मधुसूदनोर्ध्व-नयनाभ्यां नमः दक्ष-जानुनि । ऋं त्रिविक्रम-ऋद्धिभ्यां नमः दक्ष-जङ्घायाम् । ॠं वामन-रूपिणीभ्यां नमः दक्ष-पादे । लृं श्रीधर-लुप्ताभ्यां नमः वाम-पादे । ॡं हृषीकेश-लूनदोषाभ्यां नमः वाम-जङ्घायाम् । एं पद्मनाभैक-नायिकाभ्यां नमः वाम-जानुनि । ऐं दामोदरैङ्कारिणीभ्यां नमः वामोरौ । ओं वासुदेवौघवतीभ्यां नमः वाम-कुक्षौ । औं सङ्कर्षण-सर्व-कामाभ्यां नमः बाम-स्कंधे । अं प्रद्युम्नाञ्जन-प्रभाभ्यां नमः वाम-मुखे । अः अनिरुद्धास्थि-माला-धराभ्यां नमः वाम-मस्तके । कं भं भव-कर-भद्राभ्यां नमः दक्ष-पादे । खं बं शर्व-खग-बलाभ्यां नमः वाम-पादे । गं फं रुद्र-गरिमादि-फल-प्रदाभ्यां नमः दक्ष-पार्श्वे । घं पं पशुपति-घर्म-प्रशमनीभ्यां नमः वाम-पार्श्वे । ङं नं उग्र-पंक्ति-नासाभ्यां नमः दक्ष-बाहौ । चं धं महादेव-चन्द्रार्ध-धारिणीभ्यां नमः बाम-बाहौ । छं दं भीम-छन्दोमयीभ्यां नमः कंठे । जं थं ईशान-जगत्स्थानाभ्यां नमः ऊर्ध्वास्ये । झं तं तत्पुरुष-ज्वलत्ताराभ्यां नमः पूर्वास्ये । ञं णं अघोर-ज्ञान-फल-प्रदाभ्यां दक्षिणास्ये । टं ढं सद्योजात-टङ्क-धराभ्यां नमः पश्चिमास्ये । ठं डं वामदेव-टङ्कार-डामरीभ्यां नमः वामास्ये । यं ब्रह्म-यक्षिणीभ्यां नमः मूलाधारे । रं प्रजापति-रंजिनीभ्यां नमः स्वाधिष्ठाने । लं वेधाः-लक्ष्मीभ्यां नमः मणिपूरे । वं परमेष्ठि-वज्रिणीभ्यां नमः अनाहते । शं पितामह-शशि-धारिणीभ्यां नमः विशुद्धौ । षं विधातृ-षडाधाराभ्यां नमः आज्ञायाम् । सं विरिञ्चि-सर्व-नायिकाभ्यां नमः इन्दौ । हं स्रष्टृ-हसिताननाभ्यां नमः बिन्दौ । ळं चतुरानन-ललिताभ्यां नमः नादे । क्षं हिरण्य-गर्भ-क्षमाभ्यां नमः नादान्ते । अं...क्षं हरि-हर-ब्रह्माख्य-त्रिमूर्त्यात्मिकायै पराम्बा-देव्यै नमः सर्वाङ्गे व्यापकं ।

४ मन्त्र-न्यास

पूर्ववत् निम्न मन्त्रों के आदि में 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः' जोड़कर न्यास करे। यथा—

अं आं इं एक-लक्ष-कोटि-भेद-प्रणवाद्येकाक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै नमः सकल-फल-प्रदायै एक-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः मूलाधारे । ईं उं ऊं द्वि-लक्ष-कोटि-

भेद-हंसादि-द्व्यक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै नमः सकल-फल-प्रदायै द्वि-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः लिंगे। ऋं ॠं लृं त्रि-लक्ष-कोटि-भेद-वह्न्यादि-त्र्यक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै त्रिकूटेश्वर्यम्बायै नमः नाभौ। लॄं एं ऐं चतुर्लक्ष-कोटि-भेद-चन्द्रादि-चतुरक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै चतुः-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः हृदये। ओं औं अं अः पञ्च-लक्ष-कोटि-भेद-सूर्यादि-पञ्चाक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै पञ्चकूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः कण्ठे। कं खं गं षड्-लक्ष-कोटि-भेद-स्कन्दादि-षडक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै षट्-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः मुखे। घं ङं चं सप्त-लक्ष-कोटि-भेद-गणेशादि-सप्ताक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै सप्त-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः नेत्रयोः। छं जं झं अष्ट-लक्ष-कोटि-भेद-वटुकाद्यष्टाक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै अष्ट-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः आज्ञायाम्। ञं टं ठं नव-लक्ष-कोटि-भेद-ब्रह्मादि-नवाक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै नव-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः इन्दौ। डं ढं णं दश-लक्ष-कोटि-भेद-विष्ण्वादि-दशाक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै दश-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः बिन्दौ। तं थं दं एकादश-लक्ष-कोटि-भेद-रुद्राद्येकादशाक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै एकादश-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः कलायां। धं नं पं द्वादश-लक्ष-कोटि-भेद-सारस्वत्यादि-द्वादशाक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै द्वादश-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः उन्मन्याम्। फं बं भं त्रयोदश-लक्ष-कोटि-भेद-लक्ष्म्यादि-त्रयोदशाक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै त्रयोदश-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः शिरोवृत्ते। मं यं रं चतुर्दश-लक्ष-कोटि-भेद-गौर्यादि-चतुर्दशाक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै चतुर्दश-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः नादे। लं वं शं षं पञ्चदश-लक्ष-कोटि-भेद-दुर्गादि-पञ्चदशाक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै पञ्चदश-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः नादांते। सं हं ळं क्षं षोडश-लक्ष-कोटि-भेद-त्रिपुरादि-षोडशाक्षरात्मिकायै नमः अखिल-मन्त्राधि-देवतायै सकल-फल-प्रदायै षोडश-कूटेश्वर्यम्बा-देव्यै नमः ब्रह्म-रन्ध्रे। अं...क्षं सर्व-मन्त्रात्मिकायै पराम्बा-देव्यै नमः सर्वाङ्गे व्यापकं।

५ दैवत-न्यास

पूर्ववत् निम्न मन्त्रों के आदि में 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः' जोड़ ले—

अं आं सहस्र-कोटि-योगिनी-कुल-सेवितायै निवृत्त्यम्बा-देव्यै नमः दक्षिण-पादांगुष्ठे। इं ईं सहस्र-कोटि-योगिनी-कुल-सेवितायै प्रतिष्ठाम्बा-देव्यै नमः दक्ष-गुल्फे। उं

ॐ सहस्र-कोटि-तपस्वि-कुल-सेवितायै विद्याम्बा-देव्यै नमः दक्ष-जंघायाम् । ऋं ॠं सहस्र-कोटि-ऋषि-कुल-सेवितायै शान्त्यम्बा-देव्यै नमः दक्ष-जानुनि । लृं लॄं सहस्र-कोटि-मुनि-कुल-सेवितायै शान्त्यतीताम्बा-देव्यै नमः दक्षोरौ । एं ऐं सहस्र-कोटि-देव-कुल-सेवितायै हृल्लेखाम्बा-देव्यै नमः दक्ष-कट्यां । ओं औं सहस्र-कोटि-राक्षस-कुल-सेवितायै गगनाम्बा-देव्यै नमः दक्ष-पार्श्वे । अं अः सहस्र-कोटि-विद्याधर-कुल-सेवितायै रक्ताम्बा-देव्यै नमः दक्ष-स्तने । कं खं सहस्र-कोटि-सिद्ध-कुल-सेवितायै महोच्छुष्माम्बा-देव्यै नमः दक्ष-कक्षे । गं घं सहस्र-कोटि-साध्य-कुल-सेवितायै करालाम्बा-देव्यै नमः दक्ष-करे । ङं चं सहस्र-कोटि-अप्सर-कुल-सेवितायै जयाम्बा-देव्यै नमः दक्ष-स्कन्धे । छं जं सहस्र-कोटि-गन्धर्व-कुल-सेवितायै विजयाम्बा-देव्यै नमः दक्ष-कर्णे । झं ञं सहस्र-कोटि-गुह्यक-कुल-सेवितायै अजिताम्बा-देव्यै नमः दक्ष-शिरसि । टं ठं सहस्र-कोटि-यक्ष-कुल-सेवितायै अपराजिताम्बा-देव्यै नमः वाम-शिरसि । डं ढं सहस्र-कोटि-किन्नर-कुल-सेवितायै वामाम्बा-देव्यै नमः वाम-कर्णे । णं तं सहस्र-कोटि-पन्नग-कुल-सेवितायै ज्येष्ठाम्बा-देव्यै नमः वाम-स्कन्धे । थं दं सहस्र-कोटि-पितृ-कुल-सेवितायै रौद्राम्बा-देव्यै नमः वाम-करे । धं नं सहस्र-कोटि-गणेश-कुल-सेवितायै मायाम्बा-देव्यै नमः वाम कक्षे । पं फं सहस्र-कोटि-भैरव-कुल-सेवितायै कुण्डलिन्यम्बा-देव्यै नमः वाम-स्तने । बं भं सहस्र-कोटि-बटुक-कुल-सेवितायै काल्यम्बा-देव्यै नमः वाम-पार्श्वे । मं यं सहस्र-कोटि-क्षेत्र-पाल-कुल-सेवितायै काल-रात्र्यम्बा-देव्यै नमः वाम-कट्यां । रं लं सहस्र-कोटि-प्रमथ-कुल-सेवितायै भगवत्यम्बा-देव्यै नमः वामोरौ । वं शं सहस्र-कोटि-ब्रह्म-कुल-सेवितायै सर्वैश्वर्यम्बा-देव्यै नमः वाम-जानुनि । षं सं सहस्र-कोटि-विष्णु-कुल-सेवितायै सर्वज्ञाम्बा-देव्यै नमः वाम-जङ्घायाम् । हं लं सहस्र-कोटि-रुद्र-कुल-सेवितायै सर्व-कर्त्र्यम्बा-देव्यै नमः वाम-गुल्फे । क्षं सहस्र-कोटि-चराचर-कुल-सेवितायै कुल-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः वाम-पादांगुष्ठे । अं आं···क्षं सर्व-देवतात्मिकायै परा-शक्त्यम्बा-देव्यै नमः सर्वाङ्गे व्यापकं ।

६ मातृका-न्यास

निम्न-लिखित प्रत्येक मन्त्र के आदि में 'ऐं ह्रीं श्रीं हसौः' जोड़-कर न्यास करे। यथा—

कं-४ अनन्त-कोटि-भूचरी-कुल-सहितायै आं क्षां मङ्गलाम्बा-देव्यै आं क्षां ब्रह्माण्यम्बा-देव्यै अनन्त-कोटि-भूत-कुल-सहितायै अं क्षं मङ्गल-नाथाय अं क्षं असिताङ्ग-भैरव-नाथाय नमः मूलाधारे । चं-४ अनन्त-कोटि-खेचरी-कुल-सहितायै ईं लां चर्चिकाम्बा-देव्यै ईं लां माहेश्वर्यम्बा-देव्यै अनन्त-कोटि-वेताल-कुल-सहितायै इं लं चर्चिक-नाथाय इं लं रुरु-भैरव-नाथाय नमः लिङ्गे । टं-४ अनन्त-कोटि-पाताल-खेचरी-कुल-सहितायै ऊं हां योगेश्वर्यम्बा-देव्यै ऊं हां कौमार्यम्बा-देव्यै अनन्त-कोटि-पिशाच-कुल-सहितायै उं हं

योगेश-नाथाय उं हूं चण्ड-भैरव-नाथाय नमः नाभौ । तं-४ अनन्त-कोटि-दिक्चरी-कुल-सहितायै ॠं सां हर-सिद्धाम्बा-देव्यै ॠं सां वैष्णव्यम्बा-देव्यै अनन्त-कोट्यपस्मार-सहितायै ॠं सं हुर-सिद्ध-नाथाय ॠं सं क्रोध-भैरव-नाथाय नमः हृदये । पं-४ अनन्त-कोटि-सहचरी-कुल-सहितायै ॡं षां भट्टिन्यम्बा-देव्यै ॡं षां वाराह्यम्बा-देव्यै अनन्त-कोटि-ब्रह्म-राक्षस-कुल सहितायै ॡं षं भट्टि-नाथाय लृं षं उन्मत-भैरव-नाथाय नमः कण्ठे । यं-३ अनन्त-कोटि-गिरि-चरी-कुल-सहितायै ऐं शां किलि-किलाम्बा-देव्यै ऐं शां इन्द्राण्यम्बा-देव्यै अनन्त-कोटि-चेटक-कुल-सहितायै एं शं किलि-किलि-नाथाय एं शं कपाली-भैरव-नाथाय नमः आज्ञायां । शं-१ अनन्त-कोटि-वनचरी-कुल-सहितायै औं वां काल-रात्र्यम्बा-देव्यै औं वां चामुण्डाम्बा-देव्यै अनंत-कोटि-प्रेत-कुल-सहिताय ओं वं काल-रात्रि-नाथाय ओं वं भीषण-भैरव-नाथाय नमः भाले । कं क्षं अनन्त-कोटि-जलचरी-कुल-सहितायै अः लां भीषणाम्बा-देव्यै अः लां महालक्ष्म्यम्बा-देव्यै अनन्त-कोटि-कूष्माण्ड-कुल-सहितायै अं लं भीषण-नाथाय अं लं संहार-भैरव-नाथाय नमः ब्रह्मरन्ध्रे । अं आं...क्षं मातृ-भैरवाधिपायै पराम्बा-देव्यै नमः सर्वाङ्गे व्यापकं ।

अर्द्ध-नारीश्वर का ध्यान

इस प्रकार न्यास कर अपने हृदय-कमल में अर्द्ध-नारीश्वर भगवान् शिव का ध्यान करे । यथा—

अमृतार्णव-मध्योद्यन्मणि-द्वीपे सुशोभिते । कल्पवृक्ष-वनान्तःस्थ-नव-माणिक्य-मण्डपे ॥
नव-रत्न-मय श्रीमत्सिंहासन-गतेऽम्बुजे । त्रिकोणान्तः-समासीनं चन्द्र-सूर्य-समन्वितम् ॥
अर्द्धाम्बिका-समायुक्तं प्रविभक्त-विभूषणम् । कोटि-कन्दर्प-लावण्यं सदा षोडश-वार्षिकम् ॥
मन्द-स्मित-मुखाम्भोजं त्रिनेत्रं चन्द्र-चूडकम् । दिव्याम्बर-स्रगालेपं दिव्याभरण-भूषितम् ॥
पान-पात्रं च चिन्मुद्रां त्रिशूलं पुस्तकं करैः । विद्या-संसिद्धि बिभ्राणं-सदानन्द-मुखेक्षणम् ॥
महा-षोढोदिताशेष-देवता-गण-सेवितम् । एवं चित्ताम्बुजे ध्यायेदर्द्ध-नारीश्वरं शिवम् ॥

अर्थात् अमृत-सागर के मध्य में उभरा हुआ मणि-द्वीप सुशोभित है । उसमें कल्प-वृक्षों के वन के अन्तर्गत नव-माणिक्यों से बना मण्डप है । उस मण्डप में नव-रत्न-जटित सुन्दर सिंहासन पर कमल की त्रिकोणाकार कर्णिका में चन्द्र-सूर्य से शोभायमान और आधे शरीर में अम्बिका से युक्त भगवान् शिव विराजमान हैं । दोनों के विशेष आभूषण उनके शरीरों में अलग-अलग शोभित हैं । करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर और सदा सोलह वर्ष की अवस्थावाले अर्द्ध-नारीश्वर भगवान् का मुख-कमल मन्द मुस्कान से युक्त है, तीन नेत्र हैं और चूडा चन्द्रमा से शोभायमान है । दिव्य वस्त्र, आभूषण, पुष्प-माला और चन्दन धारण किए हैं । चार हाथों में पान-पात्र, चिन्मुद्रा, त्रिशूल और पुस्तक लिए हैं । विद्याओं और सिद्धियों से युक्त वे सदा आनन्दपूर्ण हैं । महा-षोढा में उल्लिखित असंख्य देवता सदैव उनकी सेवा में लगे रहते हैं । ऐसे अर्द्ध-नारीश्वर भगवान् शिव का ध्यान अपने हृदय-कमल में करे ।

पुं, स्त्री या निष्कल रूप का ध्यान

अर्द्ध-नारीश्वर का ध्यान चाहे पुं-रूप में करे या स्त्री-रूप में अथवा सच्चिदानन्द-रूप निष्कल स्वरूप का ध्यान करे, जो सर्व-तेजोमय और चराचरात्मक है ।

मुद्राओं का प्रदर्शन

फिर योनि, लिङ्ग, सुरभि, हेति, वनमाला, महामुद्रा, नभो मुद्रा दिखाकर यथा-शक्ति मूल-मन्त्र का जप कर श्री पादुका का भी जप करे।

श्रीगुरुदेव का ध्यान

तदनन्तर मूर्ध्नि (शिर) में शिव-स्वरूप श्री गुरुदेव का ध्यान करे। यथा–

सहस्र-दल-पङ्कजे सकल-शीत-रश्मि-प्रभम् । वराभय-कराम्बुजं विमल-गन्ध-पुष्प-स्रजम् ॥
प्रसन्न-वदनेक्षणम् सकल-देवता-रूपिणम् । स्मरेत् शिरसि हंसगं तदभिधान-पूर्वं गुरुम् ॥

महा-षोढा-न्यास का फल

इस प्रकार षोढान्यास जो करता है, हे पार्वति ! वह साक्षात् पर-शिव के समान होता है। जो साधक प्रतिदिन 'महा-षोढा' नामक न्यास को करता है, वह निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ होता है, इसमें सन्देह नहीं। सभी देवता उसे नमस्कार करते हैं। मैं उसे नमस्कार करता हूँ, इसमें सन्देह नहीं। हे पार्वति ! जहाँ 'महा-षोढा-न्यास' किया जाता है, वह स्थान और उसके चारों ओर दश योजन तक का स्थान दिव्य क्षेत्र माना जाता है। हे देवि ! इस न्यास को कर साधक जहाँ कहीं जाता है, उसे विजय, लाभ, सम्मान और गौरव प्राप्त होता है। महा-षोढा-न्यास करनेवाला जिसकी वन्दना करता है, वह छः महीने के भीतर मृत्यु को प्राप्त करता है, भले ही स्वयं शिव उसके रक्षक हों। इसी का नाम 'वज्र-पञ्जर-न्यास' है।

इसे जो करता है, उससे दिव्य लोक, अन्तरीक्ष, भूमि, पर्वत, जल और वन में रहनेवाले प्रचण्ड भूत, वेताल, देव, राक्षस, ग्रह आदि भयभीत रहते हैं तथा उसे देखने में भी डरते हैं। महा-षोढा-न्यास करनेवाले को ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवता और ऋषि-मुनि आदि सभी नमस्कार करते हैं।

अधिक कहने से क्या, यह न्यास अनधिकारी को न बताये। इस न्यास से आज्ञा-सिद्धि प्राप्त होती है। देवता-भाव की प्राप्ति के लिये इससे बढ़कर संसार में और कोई साधन नहीं है, यह मैं सत्य कहता हूं। ऊर्ध्वाम्नाय में प्रवेश, परा-प्रासाद का ध्यान और महा-षोढा का ज्ञान–यह थोड़ी तपस्या का फल नहीं है। हे कुलेशानि ! यह संक्षेप में मैंने कुछ महा-न्यासादि तुमसे कहा है। अब तुम क्या सुनना चाहती हो ?

पाँचवाँ उल्लास : आधार, पात्र और कुल-द्रव्य

आधार-पात्रादि-सम्बन्धी प्रश्न

श्री देवी बोलीं—हे कुलेश ! आधार-पात्रों और मांसों के लक्षण तथा कुल-द्रव्य के निर्माण एवं उनके भेदों तथा माहात्म्य को कहिए। अविधि से जो पाप होता है और सविधि से जो फल मिलता है, हे करुणा-निधे ! मैं वह सब सुनना चाहती हूँ।

आधार की आवश्यकता

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो, जो तुमने पूछा है, उसे मैं कहूँगा । उसके सुनने मात्र से देवताओं के समान होता है । बिना आधार के भ्रंश माना जाता है, जिसे माताएँ स्वीकार नहीं करतीं । अतः विधि-वत् आधार की रचना कर लेनी चाहिए । आधार त्रि-पद, चतुष्पद, षट्-पद या वर्तुलाकार सुन्दर बनवाए ।

पात्र बनाने के पदार्थ

स्वर्ण, चाँदी, पत्थर, कूर्म, कपाल, आलावु, मिट्टी, नारिकेल, शङ्ख, ताम्र, मुक्ता, सीप या पवित्र वृक्षों की लकड़ी के पात्र बनाये । पात्र बहुत बड़ा या टूटा-फूटा न ले ।

कामना-भेद से पात्र

स्वर्ण, रौप्य (चाँदी) और ताम्र के पात्र सभी सिद्धियों के देनेवाले हैं । शान्ति-कर्म में पत्थर का पात्र, स्तम्भन में मिट्टी का, वश्य में नारिकेल का और अभिचार में कूर्म का पात्र प्रशस्त है । शङ्ख-पात्र ज्ञान-प्रदायक है और शुक्ति (सीप) के पात्र से देवी की प्रसन्नता होती है । कपाल, आलावु और पवित्र वृक्षों की लकड़ी के पात्र सब पापों का हरण करनेवाले होते हैं । इनमें से किसी एक पात्र की रचना करे ।

ग्यारह मद्यों के नाम

हे देवि ! अब कुल-द्रव्य का वर्णन करूँगा, ध्यान से सुनो । १ पानस, २ द्राक्ष, ३ माधूक, ४ खार्जूर ५ ताल, ६ ऐक्षव, ७ मधु, ८ उच्छिष्ट, ९ माध्वीक, १० मैरेय और ११ नारिकेल—ये ग्यारह मद्य भुक्ति व मुक्ति के देनेवाले हैं ।

बारहवें मद्य—'सुरा' के भेद एवं गुण

बारहवाँ मद्य 'सुरा' है, जो सबसे उत्तम है । 'सुरा' तीन प्रकार की है—१ पैष्टी, २ गौड़ी और ३ माध्वी । पैष्टी सब सिद्धियों को देनेवाली, गौड़ी भोग-प्रदा और माध्वी 'सुरा' मुक्ति-कारिणी है । ऐक्षवी विद्या-प्रदा, द्राक्षी राज्य-दायिनी है । तालजा स्तम्भन में प्रशस्त है और खार्जुरी शत्रु-नाशिनी है । नारि-केल की बनी लक्ष्मी-दायिनी और पानसी शुभ-कारिणी है । मधूक की बनी ज्ञान-दायिनी और माध्वी रोग-नाशिनी है । मैरेय सर्व-पाप-हारिणी होती है ।

उत्तम मद्य के लक्षण

जिस मद्य के पीने से विकार-रहित और मन को प्रसन्न करनेवाला आनन्द उत्पन्न हो, वही उत्तम मद्य है । हे देवि ! उसी से देवताओं की प्रसन्नता होती है । ऐसे मद्य से इच्छानुसार अपने पात्र को पूर्ण करे, जिससे परमानन्द की वृद्धि हो । यह आनन्द-दायक द्रव्य सभी देवों को प्रिय है ।

सुरा को देखने मात्र से सब पापों से छुटकारा मिलता है । उसकी गन्ध को सूंघने मात्र से सौ यज्ञों का फल मिलता है । मद्य को छूने मात्र से कोटि तीर्थों का पुण्य मिलता है । हे देवि ! उसे पीने से चारों प्रकार की मुक्ति साक्षात् ही प्राप्त होती है ।

'सुरा' में इच्छा आदि शक्तियाँ

सुरा की गन्ध में इच्छा-शक्ति, उसके रस में क्रिया-शक्ति, उसके स्वाद में ज्ञान-शक्ति और उसके उल्लास में परा-शक्ति अवस्थित हैं ।

'सुरा'-सेवन की विधि

मदिरा ब्रह्मगा और चित्त का शोधन करनेवाली कही गई है। अतः उपर्युक्त में से एक को लेकर पूजा-कर्म का प्रारम्भ करना चहिए। मद्य, मांस और विजया अष्ट-गन्ध के साथ मर्दित कर साधक वटिका बना ले और मद्य के अभाव में इसी वटिका को जल में मिलाकर उससे तर्पण क्रिया करे। अथवा गुड़ मिले दही से अथवा मधु-युक्त सौवीर से कर्म करे किन्तु क्रिया का लोप कदापि न करे। प्रमाद-वश यदि क्रिया का लोप हुआ, तो साधक को देवता का शाप लगता है।

मांस के तीन भेद

मांस तीन प्रकार का कहा गया है—१ खेचर का, २ भूचर का और ३ जलचर का। तर्पण के लिए इन्हीं में से एक की यथा-सम्भव कल्पना करे।

मांस-दर्शन का फल

मांस के देखने का वही फल होता है, जो सुरा-दर्शन का बताया गया है।

पितर आदि के लिये हिंसा में दोष नहीं

पितर एवं देवता के यज्ञों में वैध हिंसा की विधि है। हे प्रिये! अपने लिए प्राणियों की हिंसा कभी न करे। निमित्त के बिना तिनके का भी छेदन कभी नहीं करना चाहिए। देवता या द्विज के लिए हिंसा करने से पाप नहीं लगता। मेरा अनादर कर जो पुण्य भी किया जाता है, वह पाप ही होता है और मेरे निमित्त किया गया पाप हे शाम्भवि! पुण्य में बदल जाता है। जिन पदार्थों से पतन ही होता है, उन्हीं के द्वारा सिद्धि भी मिलती है। श्री कौल का दर्शन होने पर क्रिया का लोप न करे। सात करोड़ मुनि यही कर्म करते आये हैं।

पशु की बलि देने का मन्त्र

गन्ध-पुष्पाक्षत से पशु को पूजा कर निम्न मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित कर उसकी बलि दे—

शिवोत्कृत्तमिदं पिण्डमतस्त्वं शिवतां गतः।
तद् बुद्ध्वाशु पशो! त्वं हि माशिवस्त्वं शिवोऽसि हि॥

मांस के अङ्गों में ब्रह्मा आदि

मांस के जल में ब्रह्मा, गन्ध में विष्णु, रस में रुद्र और आनन्द में परमात्मा का वास है। अतः हे प्रिये! वह सेवनीय है।

मांस के अभाव में देय पदार्थ

मांस का अभाव होने पर लहसुन या अदरक से देवी की पूजा करे अन्यथा पूजा निष्फल होती है।

मत्स्य, मांस, मद्य का अङ्गाङ्गी-सम्बन्ध

मत्स्य और मांस से रहित केवल मद्य से तर्पण नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार मद्य से रहित केवल मत्स्य और मांस से पूजन नहीं करना चाहिए। तिल मात्र ही मांस और केवल आधे तिल मात्र मद्य–बिन्दु से एक बार भी तर्पण करने से समस्त यज्ञों का फल प्राप्त होता है।

कुल-पूजा के न करने से दोष

कुल-पूजा के समान तीनों जगत् में कोई पुण्य नहीं है। अतएव जो भक्ति-पूर्वक पूजा करता है, वह भक्ति और मुक्ति को प्राप्त करता है। अनपढ़ और शास्त्र को न जाननेवाला भी यदि गुरु-भक्त और दृढ़-व्रती होकर कुल-पूजा में लगा रहता है, तो मुझे सबसे अधिक प्रिय होता है। चारों वर्णों और आश्रमों के पुरुष, स्त्री, नपुंसक सभी के द्वारा पूजित होने पर तुम अभीष्ट फल को प्रदान करती हो। पूजा किए जाने पर उत्तम वधू के समान इस लोक में शुभ फल और पूजा न करने पर तुम कुत्सित वधू के समान दुःख देती हो। कुल-पूजा के बिना जो दुर्बुद्धि ऐसा करता है, वह इक्कीस पीढ़ियों के साथ घोर नरक में जाता है। अतः सब प्रयत्न करके कुल-पूजा में लगना चाहिए, जिससे सब सिद्धियाँ मिलती हैं, इसमें सन्देह नहीं।

कुल-पूजा में असमर्थ का कर्तव्य

कुल-पूजा में यदि असमर्थ हो, तो पूजन की सामग्री प्रदान करे। जो सामग्री न दे सकता हो, वह पूजन का दर्शन करे। सौ यज्ञों को करने से जो फल मिलता है, वही फल केवल एक बार कुल-पूजा करने से प्राप्त होता है। महान सोलह दानों से जो फल मिलता है, वहीं फल श्री चक्र का दर्शन करने से मिलता है। साढे तीन कोटि तीर्थों में स्नान करने से जो फल मिलता है, वह एक बार कुल-पूजा करने से मिलता है। अधिक कहने से क्या, हे देवि ! जो यथा-शक्ति कलाचार्य को पूजा के लिए कुल-द्रव्य देता है, वह धर्म का वास्तविक ज्ञाता है।

शैव, वैष्णव आदि सभी सम्प्रदायों में मद्य-मांस आवश्यक

शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, बौद्ध, पाशुपत, सांख्य, दक्षिण, वाम, सिद्धान्त, वैदिक आदि सभी सम्प्रदायों में बिना मद्य-मांस के पूजन करना निष्फल होता है।

जप-यज्ञादि में कुल-द्रव्य आवश्यक

कुल-द्रव्यों के बिना जप-यज्ञ, तप, व्रत आदि करने से वह सब उसी प्रकार निष्फल होता है जिस प्रकार राख में किया गया हवन।

अन्तर्याग करनेवाले की श्रेष्ठता

जिस प्रकार राजा को अन्तरङ्ग सेवक जितने प्रिय होते हैं, उतने वाह्य कर्मचारी नहीं, उसी प्रकार हे देवि ! तुम्हें अन्तर्याग करनेवाले जितने प्रिय हैं, उतने अन्य नहीं।

कुल-द्रव्य के सेवन का फल

हे देवि ! जो भक्ति के साथ हम दोनों को मांस और आसव अर्पित कर अन्तर्याग में तत्पर होकर आनन्द का उद्भाव करते हैं, वे कौलिक हम दोनों ही के सच्चिदानन्द-लक्षण से युक्त स्वरूप वाले होते हैं। अन्तः-स्थित उल्लास का अनुभव मन और वाणी से परे है। वह कुल-द्रव्य के ही उपभोग से परिस्फुरित होता है, अन्य किसी उपाय से नहीं। कुल-द्रव्य का सेवन करने से कुल-तत्व का अर्थ ज्ञात होता है और भैरवावेश का उद्रेक होकर साधक सर्वत्र सम-दर्शी होता है।

जिस प्रकार दीपक द्वारा अँधेरा घर दिखाई देता है, उसी प्रकार द्रव्य-पान द्वारा माया से ढँकी हुई आत्मा दिखाई पडती है। मन्त्र द्वारा पवित्र और गुरुदेव एवं देवता को अर्पित कुल-द्रव्य जो पीते हैं, उन्हें स्तन-पान नहीं करना पड़ता अर्थात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता।

'मद्य' भैरव देव-स्वरूप है और 'मद्य' शक्ति-रूप है। 'मद्य' का भोक्ता देवताओं को भी मुग्ध करता है। उस मैरेय का पान कर जो विकृत नहीं होता और मेरे ध्यान में एकाग्र हो जाता है, वह मुक्त होता है और वही कौलिक है।

मोक्ष का लक्षण

'सुरा' शक्ति है और 'मांस' शिव। उन दोनों का भोक्ता साक्षात् भैरव है। उन दोनों के ऐक्य से उत्पन्न होनेवाला आनन्द 'मोक्ष' कहलाता है। आनन्द ब्रह्म का रूप है और वह देह में स्थित है। उसे अभिव्यञ्जित (व्यक्त) करनेवाला मद्य है। इसी से योगी उसका पान करते हैं। मद्य से पूर्ण कमण्डलु, शङ्ख एवं कपाल को धारण करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर को यह संसार क्या नहीं देखता! वीर साधक निःशङ्क, निर्भय, निःसङ्कोच और वेद-शास्त्रार्थ से समर्थित होकर वर देनेवाली वारुणी का पान करता है।

मन्त्र-संस्कार से संशोधित अमृत-पान के द्वारा हे पार्वति! संसार-बन्धन से छुड़ानेवाला देवता-भाव जाग्रत् होता है।

ब्राह्मण आदि द्वारा मद्य-पान का समय

ब्राह्मण के लिए यह अमृत सदा पेय है, क्षत्रिय के लिये युद्ध के आसन्न होने पर, वैश्य के लिये यज्ञ के अवसर पर और शूद्र के लिये श्रम-साध्य कार्य होने पर यह पेय है। देवताओं और पितरों की पूजाकर गुरुदेव का स्मरण करते हुये शास्त्रोक्त विधि से मद्य-पान और मांस-भोजन करने से कोई दोष नहीं होता। पितरों और देवताओं की तृप्ति के लिये और ब्रह्म-तत्व में ध्यान स्थिर करने के लिये मधु-मांस का सेवन करे। यदि कोई तृष्णा के वश होकर इनका सेवन करता है, तो वह पापी होता है। मन्त्रार्थ के स्फुरण और मन की स्थिरता के लिये तथा संसार के बन्धन से मुक्ति पाने के लिये ज्ञान-पूर्वक पान करना चाहिये। जो केवल अपने सुख के लिये मद्यादि का सेवन करता है, वह पापी होता है। स्वेच्छा से रहित होकर देवता की प्रसन्नता के लिये मत्स्य, मांस, सुरा आदि मादकों का सेवन करना चाहिये।

याग-काल के सिवा मद्यादि का सेवन नहीं

याग-काल के सिवा अन्य समयों में मद्यादि का सेवन करने से दोष होता है। जिस प्रकार यज्ञों में विप्रों के लिये सोम-पान की विधि है, उसी प्रकार पूजा के समय इनका सेवन भोग और मोक्ष-प्रदायक है। श्रीगुरुदेव से कुल-शास्त्रों की भावना को अच्छी तरह समझकर पञ्च-मुद्राओं का सेवन करना चाहिये, अन्यथा पतन होता है।

वीर साधक को भी वृथा-पान निषिद्ध

गुरु-पंक्ति और वटुक आदि का पूजन किये बिना यदि वीर साधक भी वृथा पान करता है, तो वह देवता के शाप को प्राप्त करता है। भैरव की पूजा किये बिना और देवता का तर्पण किये बिना जो पशु-विधि से पान करता है, वह वीर साधक भी नरक में जाता है।

कौलिक आचार न जाननेवाले को कुल-शास्त्र का अधिकार नहीं

कौलिक आचार को बिना जाने और गुरु-पादुका का अर्चन किये बिना जो इस शास्त्र में प्रवेश करता है, उसे तुम निश्चय ही दुःख देती हो।

अनधिकार द्रव्य-भोग से सभी धर्मों से बहिष्कार

कौल-ज्ञान को हृदयङ्गम किये विना जो द्रव्यों का भोग करना चाहता है, वह महा-पापी माना जाता है और सभी धर्मों से उसका बहिष्कार होता है। समयाचार से हीन, स्वेच्छाचारी दुरात्मा को सिद्धियाँ न मिल कर वह कुल से पतित होता है। उसकी सङ्गत नहीं करनी चाहिये। जो शास्त्र की विधि को छोड़कर मनमाने ढंग से व्यवहार करता है, वह इस संसार में सिद्धि नहीं पाता और नरक में जाता है। दीक्षा-संस्कार से रहित जो स्वेच्छा से रहता है, उसकी कोई सद्‌गति तप, तीर्थ, व्रत आदि द्वारा नहीं होती।

अशुद्ध पञ्च-तत्वों का सेवन निषिद्ध

जो असंस्कृत द्रव्य को पीता है, अपने स्वाद के लिये मांस खाता है और बलात्कार करता है, वह भयङ्कर नरक में जाता है।

पशवाचार मानने से कौल को नरक

जो कौल साधक पशु-व्रतों को मानते हैं, वे दोनों पक्षों की विडम्बना करते हैं और शरीर में जितने केश हैं, उतने काल तक रौरव नरक में रहते हैं। जो दूसरे दर्शन को मानते हुये कुल-द्रव्यों का सेवन करते हैं, वे अपने शरीर के केशों के समान काल तक भूत-योनियों में जन्म लेते हैं।

मद्य में आसक्त व्यक्ति का पतन

मद्य-पान से जिसकी आत्मा ढँकी हुई है, वह ध्यान, तप, पूजा, धर्म, सत्कर्म, देवता, गुरु, आत्मा का कुछ भी ज्ञान नहीं रखता। वह कौलिक नहीं है, केवल विषय-भोग में आसक्त है। उसका पतन ही होता है, इसमें सन्देह नहीं। कौलोपदेश से हीन व्यक्ति यदि मद्य, मांस और स्त्री में आसक्त होता है, तो वह अक्षय नरक को प्राप्त होता है। हे कुलेशि! ब्रह्म-निष्ठ भी बिना संस्कार के पञ्च-मुद्रा का सेवन करने से निन्दनीय होता है। अतः लिङ्ग-त्रय का जाननेवाला और षट्-चक्रों का भेदक योगी पीठ-स्थानों में आकर महा-पद्म-वन में विचरण करे।

सुधा-पान का वास्तविक लक्षण

मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक वारम्वार जाकर चिच्चन्द्र-कुण्डली-शक्ति के सामरस्य से उत्पन्न सुख को अनुभव करते हुये व्योम-पङ्कज से निकलती हुई सुधा को पान करना ही 'सुधा-पान' है। अन्य तो केवल मद्य पीनेवाले हैं।

मांस-मत्स्य-भक्षण का वास्तविक लक्षण

पुण्य और पाप रूपी पशु को ज्ञान-रूपी खड्‌ग से मारकर अपने चित्त को जो पर-तत्व में लय करता है, वही मांस-भक्षण करता है। अपने मन द्वारा इन्द्रियों को नियन्त्रित कर आत्मा में लगानेवाला ही मत्स्य खानेवाला है। शेष तो प्राणियों के हिंसक मात्र हैं।

मैथुन का वास्तविक लक्षण

पशु-भाव वाले व्यक्ति की शक्ति सोई हुई रहती है। कौल साधक की शक्ति जाग्रत् रहती है। उस शक्ति का जो सेवन करता है, वही शक्ति का सेवक है। जो परा-शक्ति और अपनी आत्मा के संयोग से होनेवाले आनन्द को अनुभव करता है, वही मैथुन का मर्मज्ञ है। अन्य लोग स्त्री-सेवी मात्र हैं।

इस प्रकार गुरु-मुख से पाँचों मुद्राओं की भावना को जानकर जो साधना करता है, वह मुक्त होता है। हे देवि! कुल-द्रव्य आदि का लक्षण मैंने संक्षेप में तुमसे कहा है। अब तुम क्या सुनना चाहती हो?

छठा उल्लास : पूजा-रहस्य और द्रव्य-संस्कार

श्री देवी बोलीं—हे कुलेश ! मैं पूजन करनेवाले का लक्षण सुनना चाहती हूँ । हे प्रभो ! मुझे कुल-द्रव्यादि का संस्कार और अर्चन बताओ ।

पूजन करनेवाले का लक्षण

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो, जो तुमने पूछा है, उसे मैं कहूँगा । उसके सुनने मात्र से देव-दानवों द्वारा स्तुति की जाती है । पापों से रहित, पुण्य कर्म करनेवाले, कुल-ज्ञान से सुसम्पन्न और दृढ़ व्रतवाले मनुष्य तुम्हारा भजन करते हैं । पूर्णाभिषेक से युक्त, वेद-शास्त्रार्थ का तत्व जाननेवाला, देवता और गुरु का भक्त साधक आत्म-निष्ठ होकर अर्चन करे । हे कुल-नायिके ! कुलागम के रहस्य का ज्ञाता देवता की आराधना करने के लिए उत्सुक होकर गुरु के उपदेश से युक्त होकर पूजन करे । क्रोध और लोभ से रहित, पशु-व्रतों से विमुख रहकर शुद्धात्मा हो अति हर्ष के साथ पूजन करे । हे प्रिये ! जब बहुत समय बीतने पर मेरी कृपा से कृतार्थ होनेवाले व्यक्ति में दृढ़ भक्ति उदय हो, तब भैरव द्वारा कथित द्रव्यों से गुरूपदेश की विधि से उनका तर्पण करे । अन्यथा करने से पतन होता है । हे देवेशि ! मन्त्र-योग से श्रीचक्र-पूजन को करे । उसे मैं तुम्हारे साथ सादर स्वीकार करता हूँ । 'मैं भैरव हूँ'—इस अनुभूति के साथ सर्वज्ञ आदि गुणों से युक्त योगि-श्रेष्ठ साधक कुल-पूजा करे । उक्त लक्षणों से युक्त, नियमों का पालन करनेवाला जो कौलिक तुम्हारा अर्चन करता है, वह भुक्ति और मुक्ति का अधिकारी होता है ।

कुल-पूजा का स्थान और आसन

एकान्त स्थान में, किसी वन-प्रदेश में या बाधा-रहित स्थान में सुखासन पर पूर्व या उत्तर-मुख बैठकर अमृत-सागर में स्थित मणि-द्वीप में कल्प-वृक्ष के नीचे रत्न-प्राकार से देदीप्यमान माणिक्य-मण्डप का ध्यान करे, जो पुष्प-मालाओं के वितान से सुशोभित है और प्रच्छन्न पट्ट-वस्त्रों से आवृत, कर्पूर-दीप से प्रकाशमान तथा धूपादि से सुगन्धित है । उस मण्डप में अपने को स्थित मानता हुआ स्थिर-चित्त से हे देवि ! श्री गुरुदेव की आज्ञा से कुल-पूजा सम्पन्न करे ।

पंच-शुद्धि की आवश्यकता

१ आत्म-शुद्धि, २ स्थान-शुद्धि, ३ मन्त्र-शुद्धि, ४ द्रव्य-शुद्धि और ५ देव-शुद्धि—ये पांच शुद्धियां जब तक साधक नहीं करता, तब तक देव-पूजा नहीं होती ।

सुन्दर स्नान, भूत-शुद्धि, प्राणायाम, षडङ्गादि समस्त न्यासों से 'आत्म-शुद्धि' होती है ।

पूजा-स्थान को सम्मार्जन, अनुलेपन आदि के द्वारा दर्पण के समान स्वच्छ करना और वितान धूप-दीप-पुष्पमाला-पञ्च-रङ्गों से सजाना 'स्थान-शुद्धि' कही गई है ।

मूल-मन्त्र के अक्षरों को मातृका-वर्णों से ग्रथित कर क्रम-पूर्वक द्विरावृत्ति करने से 'मन्त्र-शुद्धि' होती है ।

पूजा-द्रव्यों और आसन का 'मूलं फट्' मन्त्र से प्रोक्षण कर उन्हें धेनु-मुद्रा दिखावे—यह 'द्रव्य-शुद्धि' है ।

पीठ में देवता की प्राण-प्रतिष्ठा कर उसके विग्रह का सकलीकरण कर मूल-मन्त्र से दीप्तात्मा होकर साधक न्यास-द्रव्योदक से तीन बार उसका प्रोक्षण करे—यह 'देव-शुद्धि' कही गई है ।

इस प्रकार 'पञ्च-शुद्धि' कर पूजन करे । तभी पूजा करे । तभी पूजा सफल होती है, अन्यथा वह निष्फल होती है ।

पूजा में मण्डल की आवश्यकता

हे प्रिये ! 'मण्डल' के बिना पूजा निष्फल होती है । अतः 'मण्डल' की रचना कर विधिवत् उसमें पूजा करे । अखण्ड-मण्डलाकार विश्व को व्याप्त कर स्थित है । त्रैलोक्य जिस 'मण्डल' से शोभायमान है, वह सदाशिव-स्वरूप है । चतुरस्र उड़डोयान-पीठ है, वृत्त (वर्तुल) कामरूप-पीठ है, चन्द्रार्ध जालन्धर-पीठ है और त्रिकोण (त्र्यस्र) पूर्णगिरि-पीठ है । ऐसे 'मण्डल' की पूजा कर क्रमशः आधारों की स्थापना करे ।

सामान्य आदि पाँच पात्र

१ सामान्यार्घ्य-पात्र, २ श्री पात्र, ३ गुरु-पात्र, ४ भोग-पात्र और ५ बलि-पात्र—ये पांच पात्र हैं । दो पात्र या तीन पात्र या एक पात्र न रखे । अपने दाईं ओर से लेकर बाईं ओर तक इन्हें स्थापित कर इनकी पूजा करे और मूल-मन्त्र से आसव द्वारा पूर्ण करे । फिर इनमें माष-बराबर मत्स्य और मांस-खण्ड छोड़े ।

तर्पण-द्रव्य का विचार

नष्ट, बासी, जूठे, दुर्गन्धित, गन्ध-हीन और दूसरे के पात्र में स्थित 'हेतु' (मद्य) से किया गया तर्पण निष्फल होता है । इस प्रकार के अप्रिय द्रव्यों से पात्रों को पूर्ण न करे । अमृत के समान स्वादिष्ट, सुगन्धित और मनोहर द्रव्य द्वारा जो तर्पण किया जाता है, वह सिद्धि-दायक होता है ।

असंस्कृत सुरा वर्जित

असंस्कृत सुरा पाप, कलह, व्याधि और दुःख देनेवाली है तथा आयु, श्री, कीर्ति, सौभाग्य, धन-धान्य को नष्ट करनेवाली है । अतः कुल-द्रव्य का सविधि संस्कार कर ले । तब अर्चन करे । अन्यथा असंस्कृत द्रव्य का देनेवाला और भोग करनेवाला नरक में जाता है, इसमें सन्देह नहीं । द्रव्यों की प्रतिष्ठा किए बिना न जप करे, न ध्यान । जो ऐसा न कर ध्यान करते हैं, उन मूर्खों को पग-पग पर दुःख होता है ।

आसव के बिना मन्त्र मन्त्र नहीं होता और मन्त्र के बिना आसव निरर्थक होता है । परस्पर विरोध होने से पूजा कैसे हो सकती है ? अतः इस सम्बन्ध में जो सन्देह हो, उसका निवारण गुरु-मुख से कर ले ।

मद्य का अमृतीकरण

वीक्षण, प्रोक्षण, ध्यान, मन्त्र और मुद्रा से संशोधित द्रव्य तर्पण करने के योग्य है । उससे देवता प्रसन्न होता है । अग्नि, सूर्य, इन्दु (चन्द्र), ब्रह्मा, इन्द्र, विष्ण, रुद्र और सदाशिव के चौबीस मन्त्रों से मद्य परामृत बन जाता है ।

स्वर से उत्पन्न काम-दायिनी सोलह चन्द्र-कलाएँ

१ अमृता, २ मानदा, ३ पूषा, ४ तुष्टि, ५ पुष्टि, ६ रति, ७ धृति, ८ शशिनी, ९ चन्द्रिका, १० कान्ति, ११ ज्योत्स्ना, १२ श्रीः, १३ प्रीति, १४ अङ्गदा, १५ पूर्णा, १६ पूर्णामृता—ये १६ स्वरों से उत्पन्न सौम्या (चन्द्र की) कलाएँ काम-प्रदायिनी हैं ।

क-भ से ठड त-क वर्णों की वसु-दायिनी बारह सूर्य-कलाएँ

१ तपनी, २ तापिनी, ३ धूम्रा, ४ मरीचि, ५ ज्वालिनी, ६ रुचि, ७ सुषुम्ना, ८ भोगदा, ९ विश्व, १० रोधिनी, ११ धारिणी, १२ क्षमा—ये १२ सौरा (सूर्य की) वसु-प्रदा कलाएँ हैं, जो क-भ से आरम्भ होकर ठ-ड में समाप्त होती हैं ।

य से क्ष तक वर्णों की दस धर्म-दायिनी अग्नि-कलायें

१ धूम्रार्चि, २ उष्मा, ३ ज्वलिनी, ४ ज्वालिनी, ५ विस्फुलिङ्गिनो, ६ सुश्रो, ७ सुरूपा, ८ कपिला, ९ हव्य-वहा, १० कव्य-वहा—ये अग्नि की धर्म-प्रदा कलाएँ हैं, जो 'य' वर्ण से प्रारम्भ होतो हैं।

ॐकार की कलाओं के नाम

अकार से उत्पन्न ब्रह्म-जात सृष्ट्यात्मक १० कलाएँ

१ सृष्टि, २ मेधा, ३ स्मृति, ४ ऋद्धि, ५ कान्ति, ६ लक्ष्मी, ७ द्युति, ८ स्थिरा, ९ स्थिति, १० सिद्धि—ये क-च वर्ग की १० सृष्टि-कलाएँ हैं, जो अकार से उत्पन्न हैं और ब्रह्म-जाता हैं।

उकार से उत्पन्न विष्णु-जात स्थित्यात्मक १० कलाएँ

१ जरा, २ पालिनी, ३ शान्ति, ४ ईश्वरी, ५ रति, ६ कामिका, ७ वरदा, ८ ह्लादिनो, ९ प्रीति, १० दीर्घा—ये ट-त वर्ग की १० स्थिति-कलाएँ हैं, जो उकार से उत्पन्न हैं और विष्णु-जाता हैं।

मकार से उत्पन्न रुद्र-जात संहारात्मक १० कलाएँ

१ तीक्ष्णा, २ रौद्री, ३ भया, ४ निद्रा, ५ तन्द्रा, ६ क्षुत्, ७ क्रोधिनी, ८ क्रिया, ९ उत्कारी, १० मृत्यु—ये प-य वर्ग की १० संहृति-कलाएँ हैं, जो मकार से उत्पन्न हैं और रुद्र-जाता हैं।

विन्दु से उत्पन्न ईश्वर-जात तिरोधानात्मक ४ कलायें

१ पीता, २ श्वेता, ३ अरुणा, ४ असिता—ये ष-वर्ग की ४ तिरोधान-कलायें हैं, जो विन्दु से उत्पन्न हैं और ईश्वर-जाता हैं।

नाद से उत्पन्न सदाशिव-जात अनुग्रहात्मक १६ कलाएँ

१ निवृत्ति, २ प्रतिष्ठा, ३ विद्या, ४ शान्ति, ५ इन्धिका, ६ दोपिका, ७ रेचिका, ८ मोचिका, ९ परा, १० सूक्ष्मा, ११ सूक्ष्मामृता, १२ ज्ञाना, १३ अमृता, १४ आप्यायिनीं, १५ व्यापिनी, १६ व्योम-रूपा ये स्वरों की सोलह अनुग्रह-कलायें हैं, जो नाद से उत्पन्न हैं और सदाशिव—जाता हैं।

तत्व-संस्कार के मन्त्र

ब्रह्म-कलाओं के पूजन के बाद 'हंसः' इत्यादि मन्त्र से, विष्णु-कलाओं के बाद 'प्रतद्विष्णु' इत्यादि से, रुद्र-कलाओं के बाद 'त्र्यम्बकं' इत्यादि से, ईश्वर-कलाओं के बाद 'तद् विष्णोः' इत्यादि से और सदाशिव-कलाओं के पूजन के बाद 'विष्णुर्योनिं' इत्यादि मन्त्र से पूजन करे।

इन ९४ मन्त्रों से पूजन करने से मन्त्र, आत्मा और देवता के भाव की सिद्धि मिलती है।

उक्त पूजन के बाद निम्न मन्त्रों से प्रथम तत्व को अभिमन्त्रित करे—

अखण्डैक-रसानन्द-करे पर-सुधात्मनि ! स्वच्छन्द-स्फुरणामत्र निधेह्यकुल-रूपिणि ॥१॥

अकुलस्थामृताकारे सिद्धि-ज्ञान-करे परे ! अमृतत्वं विधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्न-रूपिणि ॥२॥

तद्-रूपेणैक-रस्यं च कृत्वार्घ्यं तत्-स्वरूपिणि ! भूत्वा परामृताकारं मयि चित्-स्फुरणं कुरु ॥३॥

अमृतेशी-मंत्र

अब द्रव्य को शुद्ध करनेवाला ३५ अक्षरों का 'अमृतेशी' नामक मन्त्र जपे। यथा—

ऐं प्लूं स्रौं जूं सः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृत-वर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा।

दीपनी मंत्र

इसके बाद सर्व-सिद्धिदायक ३७ अक्षरों का 'दीपनी' नामक मन्त्र जपे। यथा—

ऐं वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महा-मोक्षं कुरु कुरु क्लीं ह्सौं मोक्षं कुरु कुरु ह्सौं स्हौं।

पात्र-शुद्धि की विधि

इस प्रकार, इन १ कलाओं, २ मातृका, ३ अखण्डैक आदि मन्त्रों, ४ अमृतेशी, ५ दीपनी मन्त्रों और ६ मूल-मन्त्र का क्रमशः एक, दो, तीन, चार, पाँच, आठ बार स्मरण कर पात्र का पूजन कर उसे धेनुमुद्रा दिखाए।

पात्र-शुद्धि का मन्त्र

अन्त में निम्न मन्त्र से पात्र को शुद्ध करे—

ब्रह्माण्ड-खण्ड-सम्भूतमशेष-रस-सम्भृतम्। आपूरितं महा-पात्रं पीयूष-रसमावह॥

इसके बाद उक्त प्रकार शुद्ध किये गये द्रव्य से और गन्ध-पुष्पाक्षतों से तथा न्यासोक्त सभी मन्त्रों से हे प्रिये! अपनी पूजा करे। सिर पर श्रीगुरु-पंक्ति की और मूलाधार में श्री पादुका की पूजा करे।

दिव्य-सिद्ध-मानवौघ गुरु-पंक्तियां

दिव्यौघ में—१ आदिनाथ, २ उनकी शक्ति, ३ सदाशिव, ४ उनकी पत्नी, ५ ईश्वर, ६ उनकी भार्या, ७ रुद्र, ८ उनकी वधू, ९ विष्णु, १० उनकी प्रिया, ११ ब्रह्मा, १२ उनकी पत्नी—ये बारह हैं।

सिद्धौघ में—१ सनक, २ सनन्दन, ३ सनातन, ४ सनत्कुमार, ५ सनत्सुजात, ६ ऋभुक्षज, ७ दत्तात्रेय, ८ रैवतक ९ वामदेव, १० व्यास, ११ शुक्र—ये ग्यारह हैं।

मानवौघ में—१ नृसिंह, २ महेश, ३ भास्कर, ४ महेन्द्र ५ माधव, ६ विष्णु—ये छः हैं।

दिव्यौघ में प्रत्येक नाम के अन्त में 'नमः' और 'परम शिव' की, सिद्धौघ में 'नमः और 'महा-शिव' की तथा मानवौघ में 'नमः' और 'सदा-शिव' की योजना करे।

देवी के आवाहन का मंत्र

तदनन्तर पीठ-पूजा कर देवी का आवाहन निम्न मन्त्र से करे—

महा-पद्म-वनान्तःस्थे! कारणानन्द-विग्रहे! सर्व-भूत-हिते! मातरेह्येहि परमेश्वरि॥

देवेशि! भक्ति-सुलभे! सर्वावरण-संयुते! यावत् त्वां पूजयामीह तावत् त्वं सुस्थिरा भव॥

इस मन्त्र से आवाहन कर देवी का ध्यान करे और मुद्रा दिखाकर गन्ध-पुष्पाक्षत आदि से उनकी पूजा करे।

ब्रह्म के रूप की कल्पना का कारण

चिन्मय, अप्रमेय, निर्गुण और अशरीरी ब्रह्म के रूप की कल्पना साधकों के हित के लिये की गई है।

देवी के आराधन के दश स्थान

१ लिङ्ग, २ स्थण्डिल, ३ वह्नि, ४ जल, ५ वस्त्र, ६ सूर्प, ७ मण्डल, ८ फलक, ९ मूर्ध्नि, १० हृदय—इन १० स्थानों में कर्म-काण्ड में तत्पर लोग अरूपा भगवती को रूपवती बनाकर परमा शिवा का पूजन करते हैं।

प्रतीक में पूजन करने का कारण

जिस प्रकार गायों के सारे शरीर में व्याप्त दूध उनके स्तन से स्रवित होता है, उसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त देवता प्रतिमाओं में विराजमान रहता है। बिम्ब के पूजन की अनुरूपता और साधक के विश्वास से देवता का सामीप्य मिलता है। गाय का घी शरीर में स्थित रहता हुआ भी अङ्गों को पुष्ट नहीं करता। अपने कर्म के द्वारा रचित देने पर उसे ही पुष्ट करता है। इसी प्रकार घी के समान सभी शरीरों में स्थित परमेश्वरी उपासना के बिना मनुष्यों को फल नहीं देतीं।

नियम-पालन का महत्त्व

सकलीकरण कर, देवता के प्राणों और इन्द्रियों को समुद्दीप्त कर तथा प्राण-प्रतिष्ठा कर अर्चन करे। अन्यथा कोई फल नहीं होता। मन्त्र-हीन, क्रिया-हीन और विधि-हीन अङ्ग या पद जो कुछ हो, उसे क्षमा-प्रार्थना द्वारा सिद्ध करे। नियम से अतिरिक्त जो भी कर्म किया जाता है, उसका कोई भी फल क्रम-दोष के कारण नहीं होता। न्यून या अधिक कर्मों का कभी फल नहीं होता। यथा-विधि किये गए सत्कर्म ही फल देते हैं। जप, होम, अर्चन आदि में उनकी विधि-पूर्वक किये गए कर्म ही देवता को प्रसन्न कर भुक्ति-मुक्ति-रूपी फल-दायक होते हैं।

देवता और मन्त्र-यन्त्र में ऐक्य

देवता, यन्त्र और मन्त्र की परस्पर व्यापकता को जाने बिना जो अर्चन आदि किया जाता है, वह सब हे शाम्भवि ! व्यर्थ होता है। 'यन्त्र' मन्त्र-मय कहा गया है और 'देवता' मन्त्र-रूपिणी है। 'यन्त्र' में उसका पूजन किये जाने से हे देवि ! वह तुरन्त ही प्रसन्न होती है।

'यन्त्र'-शब्द की व्युत्पत्ति

काम-क्रोधादि दोषों से उत्पन्न सभी प्रकार के दुःखों का नियन्त्रण करने से इसे 'यन्त्र' कहते हैं। 'यन्त्र' में पूजा करने से देवता प्रसन्न्न होता है। जीव के लिए जैसे शरीर है और दीपक के लिये जैसे तेल या घी है, उसी प्रकार सभी देवताओं के लिए उनका प्रतिष्ठित 'यन्त्र' होता है। अतः 'यन्त्र' की रचना कर, साकार शिव का ध्यान कर और गुरु-मुख से सब कुछ जानकर विधि-पूर्वक पूजन करे।

यन्त्र-पूजा की विधि

एक पीठ में पृथक् देवताओं की पूजा उनके यन्त्रों के बिना जो करता है, अङ्गाङ्गी-भाव न होने से उस साधक को देवता का शाप मिलता है। अतः एक पीठ में पृथक् देवताओं की पूजा उनके अलग यन्त्रों में उनकी पद्धति से उनके आवरणों के सहित अलग-अलग करनी चाहिए। एक देवता का आवाहन कर अन्य देवता का पूजन करनेवाला साधक दोनों ही देवताओं का शाप प्राप्त करता है। इन नियमों को गुरुदेव से और शास्त्र से जानकर हे प्रिये ! विधिपूर्वक सोलह उपचारों से अङ्गों और आवरणों सहित अर्चन करे, तो देवता प्रसन्न होता है। मूल-मन्त्र से गन्ध-पुष्पाक्षतादि के द्वारा महा-षोढा में उल्लिखित समस्त परिवार का, प्रत्येक नाम के आदि में प्रणव (ॐ) और अन्त में 'नमः' लगाकर पूजन करे।

देव-तर्पण की विधि

आगमोक्त मार्ग से अलि-बिन्दुओं से तर्पण करे। अपने पात्र में स्थित द्रव्य में से विधिवत अंगुष्ठ और अनामिका इन दोनों के संयुक्त नख से द्रव्य ऊपर निकालकर मूल-मन्त्र और पादुका का जप कर अन्तः-शक्ति का स्मरण करते हुये देवताओं का तर्पण करे। अंगुष्ठ भैरव-रूप है और अनामा चण्डिका-रूप। इन दोनों के योग से कुल-सन्तति (शक्ति-परिवार) का तर्पण करे।

कामना-भेद से तर्पणांगुलि

वश्य-कर्म में अंगुष्ठ और अनामिका से, अभिचार-कर्म में तर्जनी और अंगुष्ठ से तथा स्तम्भन-कर्म में कनिष्ठा और अंगुष्ठ से तर्पण करे। इस प्रकार यथा-विधि कुल-द्रव्यों से तर्पण कर तीनों गुरु-पंक्तियों को समुचित रूप से जानकर देवता के समक्ष उनका पूजन करे।

गुरु-पंक्ति का ध्यान

निम्न प्रकार गुरु-पंक्ति का ध्यान करे। यथा—

कराभ्यां चिन्मुद्रां स-मधु-नृ-कपालं च दधतीम् । द्रुत-स्वर्ण-प्रख्यामरुण-कुसुमालेप-वसनाम् ।।
कृपा-पूर्णापाङ्गीमरुण-नयनामम्बर-जटामुपेतां तिस्त्रौघैर्यजतु गुरु-पंक्तिं कृत-मतिः ।।

इस प्रकार ध्यान-पूर्वक धूप, दीप, नैवेद्य—आसव और मांस-युक्त विविध भक्ष्य पदार्थ, केला आदि फल तथा ताम्बूल समर्पित करे।

इस प्रकार मैंने कुलाचार के लक्षण—द्रव्य-संस्कार-शुद्धि आदि को बताया । अब हे देवि ! तुम अन्य क्या सुनना चाहती हो ?

सातवां उल्लास : बटुक और शक्ति-पूजन

श्री देवी बोलीं—हे कुलेश ! बटुकादि को बलि और शक्ति के लक्षण तथा द्रव्य-स्वीकार के सम्बन्ध में मुझे बताइये।

बटुकादि को बलि देना आवश्यक

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो, जो तुमने पूछा है, उसे मैं कहूंगा। उसके सुनने मात्र से तत्व-ज्ञान प्रकाशित होता है। जब तक वटुक को वलि नहीं दी जाती, तव तक ध्यान और पूजन करने से भी किसी देवता की तृप्ति नहीं होती। अतः बटुकादि का उनके मन्त्र-विधान से गन्ध, पुष्प, आसव और आमिष से पूजन कर देवता की प्रसन्नता को प्राप्त करे। पूजा-भोग के लिये जो भी द्रव्य-सामग्री लाई गई हो, उसे भक्तिपूर्वक क्षेत्रपालों को प्रदान करे।

बटुक-बलि के मन्त्र

बटुक के मन्त्रों को कहूंगा। हे कुल-नायिके ! सुनो। इन मन्त्रों से पूजन करने मात्र से सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं—

ॐ ॐ ॐ देवी-पुत्र बटुकनाथ कपिल-जटा-भार-भास्वर पिङ्गल त्रिनेत्र ज्वाला-मुख ! इमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

यह ४४ अक्षरों का वटुक-मन्त्र है। इससे बलि देकर निम्न मन्त्र से प्रार्थना करे—

वलि-दानेन सन्तुष्टो बटुकः सर्व-सिद्धिदः । शान्तिं करोतु मे नित्यं भूत-वेताल-सेवितः ।।

योगिनी-बलि के मंत्र

ॐ ॐ ॐ सर्व-योगिनीभ्यः सर्व-भूतेभ्यः सर्व-भूताधिवर्त्तिताभ्यः डाकिनीभ्यः शाकिनीभ्यः त्रैलोक्य-वासिनीभ्यः इमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

यह ५० अक्षरों का योगिनी-मन्त्र है । इससे बलि देकर निम्न मन्त्र से प्रार्थना करे—

या काचिद् योगिनो रौद्रा सौम्या घोर-तरा परा ।
खेचरी भूचरी व्योम-चरी प्रीतास्तु मे सदा ॥

सर्व-भूत-पति बलि के मंत्र

ॐ ॐ ॐ सर्व-भूतेभ्यः सर्व-भूत-पतिभ्यो स्वाहा ।

यह १७ अक्षरों का मन्त्र है । इससे बलि देकर प्रार्थना करे—

भूता ये विविधाकारा दिव्या भौमान्तरिक्षगाः पाताल-संस्था ये केचिच्छव-योगेन भाविताः ॥
ध्रुवाद्याः सत्य-सन्धाश्च इन्द्राद्याः स्वर्व्यवस्थिताः ।
तृप्यन्तु प्रीत-मनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम् ॥

क्षेत्रपाल-बलि के मंत्र

ॐ ॐ ॐ देहि देहि देवी-पुत्राय बटुक-नाथाय उच्छिष्ट-हारिणे सर्व-विघ्नान् नाशय नाशय गृह्ण गृह्ण रुरु क्षेत्रपाल सर्वोपचार-सहितामिमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

यह ६४ अक्षरों का सर्व-सिद्धि-प्रदायक क्षेत्रपाल का मन्त्र है । इससे बलि देकर प्रार्थना करे—

योऽस्मिन् क्षेत्रे निवासी च क्षेत्रपालस्य किङ्करः । प्रीतोऽयं बलिदानेन सर्व-रक्षां करोतु मे ॥

राज-राजेश्वर-बलि का मंत्र

ॐ ॐ ॐ ॐ ह्सौः स्हौः ह्रां ह्रीं ह्रूं भैरवाधिष्ठिताय अक्षोभ्यानन्द-हृदयाभीष्टदः सिद्धार्थ अवतर अवतर क्षेत्रपाल महा-शान्त मातृ-पुत्र कुल-पुत्र सिद्धि-पुत्र अस्मिन् स्थानाधिप ग्रामाधिपतयेऽस्मिन् देशाधिपतये वटुकनाथ देवो-पुत्र मेघनाद प्रचण्डोग्र-कपाली भीषण सर्व-विघ्नाधिपतये इमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण कुरु कुरु मम दूरय दूरय ज्वल प्रज्वल-प्रज्वल सर्व-विघ्नान् नाशय नाशय क्षां क्षं बुद्धि क्षेत्रपालाय वौषट् ह्रूं ।

यह १६० अक्षरों का मन्त्र है ।

ॐ ॐ ॐ अमुक-क्षेत्रपाल राज-राजेश्वर इमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

यह २८ अक्षरों का मन्त्र है । इनसे वटु-वंश-समन्वित राज-राजेश्वर को बलि देकर प्रार्थना करे—

अनेन बलि-दानेन वटु-वंश-समन्वितः ।
राज-राजेश्वरो देवो मे प्रसीदतु सर्वदा ॥

वटुकादि बलि देने के स्थान

वटुक को पश्चिम में, योगिनी को उत्तर में, सर्व-भूत को पूर्व में और क्षेत्रपाल को दक्षिण में बलि देकर मध्य में राज-राजेश्वर की पूजा करे।

वटुकादि बलि में अंगुलि-नियम

अंगुष्ठ-अनामिका से वटुक को, तर्जनी-मध्यमा-अनामा-अंगुष्ठ से योगिनी को, सभी अंगुलियों से सर्व-भूत को, अंगुष्ठ-तर्जनी से क्षेत्रपाल को और अंगुष्ठ-मध्यमा से राज-राजेश्वर को बलि दे।

कुल-दीप-लक्षण और मन्त्र

वटुकादि का पूजन कर कुल-दीपों का अर्चन करे। चार अंगुल बड़े डमरु के आकार के तीन कोनेवाले सुन्दर नौ, सात या पाँच दीपक हलके लाल रंग के आटे से बनाये। दीपक ऐसे हों कि उनमें एक कर्ष (तोला) घी आ जाय। फिर अन्तस्तेज को बहिस्तेज से मिलाते हुये अमित प्रभा वाले कुल-दीपकों को तीन बार देवी के ऊपर घुमाकर इस मन्त्र से निवेदित करे—

समस्त-चक्र-चक्रेशि ! देवेशि ! सकलात्मिके ! आरात्रिकमिदं देवि ! गृहाण मम सिद्धये ॥

शक्ति के पीने के बाद साधक द्वारा पान

अब शक्ति की पूजा करे। स्व-शक्ति या वीर-शक्ति या विशेष रूप से दीक्षित शक्ति को पान कराकर स्वयं पान करे। यह शास्त्र का निर्णय है। हे अम्बिके ! अदीक्षित स्त्री का तुरन्त संस्कार करे। मन्त्र-दीक्षा की विधि से वह शुद्ध होती है, अन्य प्रकार से नहीं। अतः सुलक्षणा शक्ति को देवता मान-कर गन्ध-पुष्पाक्षत आदि से उसका पूजन कर उसे भोग-पात्र प्रदान करे। उसके बाद सुन्दर कन्याओं और स्त्रियों को भी देवता-स्वरूप मानकर उनकी पूजा कर उन में से प्रत्येक को अलग अलग पात्र प्रदान करे। जो शक्ति को बिना दिये कुल-द्रव्य का सेवन करता है, उसकी पूजा निष्फल होती है और देवता प्रसन्न नहीं होती।

कुलाष्टक—आठ कुल-शक्तियां

१ चाण्डाली, २ चर्मकारी, ३ मातङ्गी, ४ पुक्कसी, ५ श्वपची, ६ खट्टकी, ७ कैवर्ती, ८ वेश्या ये 'कुलाष्टक' कही गई हैं।

अकुलाष्टक—आठ अकुल—शक्तियाँ

१ कन्दुकी, २ शौण्डिकी, ३ शस्त्र-जीवी, ४ रजकी, ५ गायकी, ६ रजकी, ७ शिल्पी, ८ कौलिकी—ये 'अकुलाष्टक' कही गई हैं।

'सहजा' शक्ति

तन्त्र-मन्त्र की ज्ञाता, समयाचार का पालन करनेवाली कुमारी या व्रत-धारिणी या योगिनी जो शक्ति पूजा-काल में स्वयं ही उपस्थित हो जाय, वह 'सहजा' शक्ति कही गई है।

शक्ति के अभाव में उसका अनुकल्प

उक्त शक्तियों में से किसी भी शक्ति के न होने पर चारों वर्णों में से किसी भी वर्ण की स्त्री का पूजन करे।

'सुलक्षणा' और 'वर्जनीया' शक्ति

'सुलक्षणा' शक्ति वह है, जो सुन्दर रूपवाली तरुणी शान्ता कुलाचार-परायणा, पवित्रा, शङ्का से रहिता, भक्ता, शास्त्र को माननेवाली, लोभ-हीना, सुशीला, जिसके मुख पर मुसकान हो, मधुर-

भाषिणी, गुरु और देवता की भक्ता, अच्छे विचारवाली, कौलिकों को चाहनेवाली, ईर्ष्या-द्वेष से रहिता, विशेष बातों को जाननेवाली, देवाराधन में रुचि रखनेवाली, मनोहरा और सदाचारिणी हो।

जो शक्ति दुष्टा, कर्कशा, क्रूरा, दुःखिता, कुल को दूषित करनेवाली, दुराचारिणी, पराधीना, डरी हुई, लोभिनी, लुब्धा, व्याकुला, आलसी, निद्रा में रुचि रखनेवाली, दुर्बुद्धिवाली, अङ्ग-हीना, रोगिणी, दुर्गन्धा, कुरूपा, मूर्खा, बूढ़ी, पगली, कुतर्किणी, गन्दी बात करनेवाली, निर्लज्जा, झगड़ालू, विकृत रूपवाली, गलत मार्ग पर चलनेवाली, चुप रहनेवाली, लँगड़ी, अन्धी, विकृत मुखवाली हो, वह मन्त्र-युक्ता भी हो, तो उसे पूजा-याग में न रखे।

देवी को पूजा-समर्पण का मन्त्र

तब समस्त अर्चनादि को अभिमन्त्रित जल से ७३ अक्षरोंवाले निम्न मन्त्र द्वारा देवी को समर्पित करे—

ॐ ॐ ॐ इतः पूर्वं प्राण-बुद्धि-देह-धर्माधिकार-जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिषु मनसा चेतसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना च यत् स्मृतं यत्कृतं यदुक्तं तत् सर्वं गुरवे मत् समर्पितमस्तु स्वाहा।

क्षमा-प्रार्थना-मन्त्र

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यन्मया क्रियते शिवे ! तव कृत्यमिदं सर्वमिति ज्ञात्वा क्षमस्व मे ॥

इस प्रकार प्रार्थना कर स्तुति-पूर्वक भक्ति से नमस्कार कर प्रधान देवता की मूर्ति में परिवारों का अर्चन करे। आवरण-सहित अपने हृदय-कमल पर देवी का ध्यान कर 'शेषिका' को समर्पित कर मूल-मन्त्र से अपने को शुद्ध करे।

शेषिका का मन्त्र

ऐं नमः उच्छिष्ट-चाण्डालि मातङ्गि ! सर्वं ते वश्यं कुरु कुरु।

यह २१ अक्षरों का मन्त्र है, जिससे शेषिका को निर्माल्य समर्पित करे। फिर त्रैलोक्य-मोहिनी देवी उच्छिष्ट-मातङ्गी का ध्यान करे। यथा—

वीणा-वाद्य-विनोद-गीत-निरतां नीलांशुकोल्लासिनीम्।
बिम्बोष्ठीं नव-यावकार्द्र-चरणामकीर्ण-केशालकाम् ॥
मृद्वङ्गीं सित-शङ्ख-कुण्डल-धरां माणिक्य-भूषोज्ज्वलाम्।
मातङ्गीं प्रणतोऽस्मि सु-स्मित-मुखीं देवीं शुक-श्यामलाम् ॥

गुरु द्वारा शिष्यों को तत्त्व-त्रय-दान

तदनन्तर दोनों हाथों से पात्र उठाकर द्वितीय तत्त्व के साथ साक्षात् पर-शिव-स्वरूप श्रीगुरुदेव को प्रदान करे। अपने सम्प्रदाय वाले वीर साधकों के साथ गुरुदेव का पूजन कर एक दूसरे की वन्दना करते हुये गुरुदेव की अनुमति से पान करे। दाहने हाथ से पात्र को उठाकर बाएँ हाथ से मुद्रा बनाकर द्वितीय तत्त्व के साथ यथाविधि मन्त्रोच्चारण करते हुये उसे ग्रहण करे। मांस माष (एक माशा) बराबर और द्रव्य एक चुल्लू बराबर लेकर तीन बार में अपने देह-त्रय (स्थूल, सूक्ष्म और पर) का शोधन करे। इसके लिये तरुणोल्लास से युक्त, प्रसन्न-मुख और कृपा-दृष्टि-पूर्वक गुरुदेव शिष्यों को बुलाकर तीनों तत्व प्रदान करें। शिष्य शुद्धात्मा से यथाशक्ति पुष्पादि उपहार-सामग्री लेकर गुरुदेव रूपी शिव को अर्पित कर

उन्हें भक्ति-पूर्वक मानसिक रूप से अष्टाङ्ग-प्रणाम करे। घुटनों के बल पृथ्वी पर बैठकर दोनों हाथों के अँगूठों को ग्रथित कर तर्जनी को आगे निकालकर गुरुदेव को पञ्चाङ्ग-प्रणाम करे।

शिष्य के देह का शोधन

श्रीगुरुदेव थोड़ा सिर झुकाकर अपने बाएँ हाथ की अंगुष्ठ-अनामा अंगुलियों से शिष्य के दाएँ हाथ को फैलाकर स्पर्श करें और शुद्ध हृदय से शिष्य के 'प्रकृति' से 'पृथिवी' तक के २४ शुद्ध तत्त्वों को वाग्भव (ऐं) वीज से युक्त स्वरों द्वारा आत्म-तत्व से स्थूल देह का शोधन करें। फिर 'माया' से 'पुरुष' तक के ७ शुद्धाशुद्ध तत्वों को कामराज (क्लीं) से युक्त स्पर्श वर्णों द्वारा विद्या-तत्व से शिष्य के सूक्ष्म देह का शोधन करें। तदनन्तर 'शिव' से 'विद्या' तक के ५ शुद्ध तत्त्वों को परा (सौः) से युक्त व्यापक पर-शिव-तत्व से पर-देह का शोधन करे। तब ३६ तत्वों सहित मालिनी बाला से सब तत्त्वों के आश्रय वीज का शोधन सब तत्वों से करे।

इसके बाद गुरुदेव शिष्य को द्वितीय-सहित अलि देकर कहें—'शोधय'। गुरु द्वारा प्रदत्त चुल्लू भर अलि को 'सर्व-तत्वं शोधयामि' कहते हुये शिष्य झुककर भक्ति-पूर्वक तीन बार विना कोई शब्द किये पान करे और दोनों हाथों से देह को स्पर्श कर यह अनुभव करे कि शिर से पैर तक सारा शरीर शुद्ध हो गया है।

आत्मादि तत्त्व-त्रय के भेद और उनके ज्ञान का फल

'आत्म-तत्व' स्थूल देह तक रहता है। 'विद्या-तत्व' सूक्ष्म शरीर तक दिखाई देता है और 'शिव-तत्व' पर-देह तक है। सारा जगत् तत्व-त्रयात्मक है। इस प्रकार गुरु से तत्व-त्रय को जानकर जो व्यवहार करता है, वह जीवित ही मुक्त होता है। यह शङ्कर-वचन है।

गुरु आदि के समक्ष बैठकर पान करना निषिद्ध

तब गुरुदेव स्वयं ग्रहण कर शेष द्रव्य शिष्यों को प्रदान करें। गुरुदेव द्वारा प्रदत्त आसव को द्वितीय तत्व के साथ पान करे। हे कुल-नायिके ! श्री गुरुदेव और ज्येष्ठ तथा पूज्य साधकों के सम्मुख बैठकर मद्य-पान न करे। यह शास्त्र की आज्ञा है।

प्राण-भेदादि-ज्ञान विना और मन्त्र-हीन पान निषिद्ध

प्राण-भेद के फल-स्वरूप उल्लास, प्रणाम की स्थिति और लक्षण को जाने विना जो आचरण करता है, वह आपत्ति में पड़ता है। मन्त्र के विना पान न करे, अन्यथा प्रायश्चित्त करना पड़ता है। अतः मन्त्र-विधान से पान करे। यथा—

पान करने का मन्त्र

इदं पवित्रममृतं पिवामि भव-भेषजम्। पशु-पाश-समुच्छेद-कारणं भैरवोदितम्॥
चित्ते स्वातन्त्र्य-सारत्वात्-तदानन्द-मयात्मनः। तन्मयत्वाच्च भावानां भावश्चान्तर्हिता॥
सुषुम्नानां विकाशाय सुरसस्तेन पीयते। तस्मादिमां सुरां देवीं पूर्णोऽहं त्वां पिबाम्यहम्॥

इस मन्त्र और मूल-मन्त्र का उच्चारण कर स्थिर मन से धीरे-धीरे साधक अलि-पान करे। अपने मूलाधार के त्रिकोण में स्थित, कोटि सूर्यों के समान प्रभावती, कुण्डली की आकृतिवाली चिद्-रूपा में निम्न मन्त्र से द्रव्य का हवन करे—

अहन्ता-पात्र-भरितमिदन्ता-परमामृतम्। पराहन्ता-मये वह्नौ होम-स्वीकार-लक्षणम्॥

पान की विधि

गुरु, देवता और मन्त्र में ऐक्य-भाव का चिन्तन करते हुये, जब तक उल्लास उत्पन्न न हो, तब तक मधु का पान करे। चुल्लू भर पान सिद्धि-दायक और दीप्ति होने तक पान करना ज्ञान-दायक कहा गया है और पान से परम पद मिलता है। कौल में ये तीन कहे गये हैं। भोजन के अन्त में मद्य और मद्य-पान के अन्त में भोजन विष होता है। सुरा के साथ जो अन्न लिया जाता है, उसे अमृत समझे। हे प्रिये! चर्वण के साथ पान करना अमृत होता है और चर्वण के बिना पान करना केवल विष को बढ़ाता है।

पान के तीन भेद–१ दिव्य, २ वीर, ३ पशु

दिव्य, वीर और पशु—इस क्रम से पान तीन प्रकार का कहा गया है। देवी के आगे पान करना 'दिव्य', मुद्रासन के साथ पान करना 'वीर' और स्वेच्छापूर्वक पशु के समान पिया गया 'पशु'-पान है। 'दिव्य'-पान भुक्ति-मुक्ति-दायक, 'वीर'-पान भुक्ति-दायक और 'पशु'-पान नरक-दायक है। जब तक दृष्टि, मन, वाणी और शरीर में भ्रम उत्पन्न न हो, तब तक पान करे। इससे अधिक पशु-पान होता है। जब तक इन्द्रियों में विकलता न हो, मुख में विकृति न हो, तब तक मद्य-पान करे। इससे अधिक पान करने से पतन होता है।

पूर्णाभिषिक्तों के पान की विधि

दोनों हाथों से पात्र को उठाकर मूल-मन्त्र और पादुका को स्मरण करे। कण्ठ तक पान करे, तो मुक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। पी-पीकर पुनः पिये, जब तक कि भूमि पर गिर न पड़े। उठकर फिर पिये, तो पुनर्जन्म नहीं होता। आनन्द से देवी तृप्त होती है, मूर्च्छा से स्वयं भैरव और वमन से सभी देवता तृप्त होते हैं। अतः तीनों को सम्पन्न करे। दिव्य पान में तत्पर कुल-योगियों को जो सुख मिलता है, वह सार्वभौम राजा को भी नहीं मिलता। कुल-द्रव्य के सेवन से जो सुख कुल-निष्ठों को मिलता है, वह सुख ही मोक्ष है, यह सत्य है। इस प्रकार हे कुलेशानि! तुमसे वटु शक्ति आदि के पूजन का कुछ वर्णन किया गया। अब तुम क्या सुनना चाहती हो?

आठवाँ उल्लास—उल्लास एवं पान-भेद

श्री देवी ने कहा—हे कुलेश! उल्लास के भेद, द्रव्य-पात्रादि की सङ्गति, रति, उद्वासन-काल, श्री चक्र की स्थिति और कौलिक-शक्तियों की चेष्टा के विषय में बताइये।

आरम्भादि सात उल्लास और उनके लक्षण

ईश्वर ने कहा—हे देवि! सुनो, जो तुम पूछती हो, उसे मैं बताऊँगा, जिसके सुनने मात्र से दिव्य-भावना उत्पन्न होती है। 'उल्लास' सात हैं—१ आरम्भ, २ तरुण, ३ यौवन, ४ प्रौढ़, ५ प्रौढ़ान्त, ६ उन्मना और ७ मनोल्लास (वश्योल्लास)।

तीन तत्त्वों के होने से 'आरम्भ' उल्लास होता है। तरुण-सुख के होने पर 'तरुणोल्लास' माना जाता है। मन के सम्यक् उल्लास की स्थिति को 'यौवनोल्लास' कहा जाता है और दृष्टि, मन, वचन का स्खलन होने पर 'प्रौढ़ोल्लास' होता है।

द्रव्य-सङ्गति में नियम

चक्र में समुल्लास की स्थिति होने पर यदि पात्र-मेलन की इच्छा हो, तो अधिकार के अनुसार ही पात्र-मेलन करे। अदीक्षित, अनाचारी, अतन्त्रज्ञ, इष्ट-देव से रहित, दोष-भाव रखनेवाले, समयाचार से भ्रष्ट, अज्ञानी, अहङ्कारी, प्रपञ्ची, पशु-भावापन्न, क्षुद्र कर्म करनेवाले, स्त्री-द्वेषी, गुरुओं से अभिशप्त, भक्ति-हीन, दुरात्मा, कुलोपदेश से हीन और पद-वाक्य-प्रमाण एवं श्रुति-स्मृति के अर्थ जाननेवाला भी यदि कुल-धर्म से अनभिज्ञ है, तो उसके साथ द्रव्य-पात्र की सङ्गति न करे। अच्छे कुल में उत्पन्न हो या आचारवान वृद्ध हों, यदि तुम्हारी पूजा से विमुख हैं, तो उनका सङ्ग छोड़ दे। हे पार्वति ! सुनो, स्त्री-पुत्र, मित्र, बन्धु कितने ही घनिष्ठ क्यों न हों, यदि कुलाचार को नहीं जानते, तो उनकी सङ्गत न करे। दूसरे देश के निवासियों के साथ, जिनका परिचय अज्ञात है, द्रव्य-सङ्गति तब तक न करे, जब तक 'संकेत' द्वारा 'योग' (ऐक्य-भाव) न हो। भले ही कुलेश्वर क्यों न हो, 'एक पात्र' न करे अर्थात् एक ही पात्र द्वारा द्रव्य-पान न करे। अपने पात्र का हेतु (मद्य) भैरव को अर्पित न करे, अन्यथा मन्त्र विपरीत हो जाते हैं और पग-पग पर विघ्न होते हैं। अपना आसन, भोजन, पात्र, वस्त्र और शैय्या आदि अनभिज्ञ और अयोग्य लोगों को न दे और उनका सङ्ग कभी न करे।

स्रोत (आम्नाय) के विभागों के अनुसार कौलिक को पात्र की सङ्गति करनी चाहिये। पूर्व और दक्षिण, उत्तर और पश्चिम आम्नायों में ऐक्य-भाव है। अतः इन चारों स्रोतों के क्रमार्चन में तत्पर अपने समान वीर साधकों और स्त्रियों के साथ सङ्गति करे। योगियों और योगिनियों द्वारा प्रदत्त पूर्ण पात्र को अपनी मातृका और मूल-मन्त्र से अभिमन्त्रित कर पान करे। कभी यदि दैवयोग से अलि-पात्र प्राप्त हो, तो भक्ति से ग्रहण कर पूर्ववत् अभिमन्त्रित कर गुरुदेव का स्मरण करते हुये उसे पान करे।

चक्र में उच्छिष्ट-पान-भक्षण का नियम

हे पार्वति ! गुरु-शक्ति, गुरु-पुत्र और अपने से ज्येष्ठ साधक का उच्छिष्ट खाना चाहिये, अन्य का नहीं। शक्ति का उच्छिष्ट द्रव्य पीना चाहिये और वीरों का उच्छिष्ट चर्वण खाना चाहिये। अपना उच्छिष्ट न देना चाहिये, न दूसरों का खाना चाहिये। स्त्रियों का उच्छिष्ट तो खाये किन्तु उन्हें अपना उच्छिष्ट चक्र में भी न दे। अन्यथा पतन होता है। हे अम्बिके ! केवल अपने कनिष्ठ शिष्यों को ही उच्छिष्ट दे। जो स्नेह, लोभ या भय-वश अन्य किसी को उच्छिष्ट आसव या पात्र देता या लेता है, वह देवता के शाप को प्राप्त करता और आपत्ति में पड़ता है।

उच्छिष्ट-भैरव को बलि देने की विधि

प्रौढोल्लास होने पर पूजा-गृह से वाहर या भीतर एक त्रिकोण बनाकर गन्ध-पुष्पाक्षतों से उसकी पूजा कर उच्छिष्ट-भैरव का ध्यान करे। यथा—

गदा-त्रिशूल-डमरु-पात्र-हस्तं त्रिलोचनम्। कृष्णाभं भैरवं ध्यायेत् सर्व-विघ्न-निवारणम्॥

इसके बाद निम्न २२ अक्षरवाले मन्त्र से बलि प्रदान करे—

ॐ ॐ ॐ उच्छिष्ट-भैरव एहि एहि बलिं गृह्ण गृह्ण फट् स्वाहा।

शान्ति-स्तव का पाठ

तदनन्तर 'शान्ति-स्तव' का पाठ कर अलि-विन्दुओं से तर्पण करे। यथा—

यजन्ति देव्यो हर-पाद-पङ्कजं, प्रसन्न-वाम-स्थित-मोक्ष-दायकम् ।
अनन्त-सिद्धान्त-मति-प्रबोधकं, नमामि चक्राष्टक-योगिनी-गणम् ॥ १ ॥
योगिनी-चक्र-मध्यस्थं मातृ-मण्डल-वेष्टितम् । नमामि शिरसा नाथं भैरवं भैरवी-प्रियम् ॥२॥
अनादि-घोर-संसार-परिध्वंसैक-हेतवे । नमः श्रीनाथ-वैद्याय कुलौषधि-विधायिने ॥ ३ ॥
आपदो दुरितं रोगाः समयाचार-लङ्घनात् । तत्सर्वाणि व्यपोहन्तु दिव्य-चक्रस्य मेलनात् ॥४॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं कीर्तिर्लाभः सुखं जयः । कान्तिर्मनोहरा चास्तु पान्तु सर्वाश्च देवताः ॥५॥
सम्पूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र-योगीन्द्र-तपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य कुलस्य राज्ञः, करोतु शान्तिं भगवान् कुलेशः ॥ ६ ॥
नन्दन्तु साधक-कुलाढ्य-दर्शका ये, सिंहासनाद्युषित-शाक्त-महान्वया ये ।
नन्दन्तु सर्व-कुल-कौल-रताः परे ये, चान्ये विशेष-पद-भेदक-शाम्भवा ये ॥ ७ ॥
नन्दन्तु सिद्ध-गुरवस्तदनुक्रमौघाः, ज्येष्ठानुगाः समयिनो बटुकाः कुमार्य्यः ।
ये योगिनी-प्रवर-वीर-कुले प्रसूता, आचार्य्य-भूमि-पतयो द्विज-साधु-लोकाः ॥ ८ ॥
नन्दन्तु नीति-निपुणा निरवद्य-निष्ठा, निर्मत्सरा निरुपमा निरुपद्रवाश्च ।
नित्यं निरञ्जन-रता गुरवो निरीहाः, शान्ताश्च शान्त-मनसो हृत-शोक-शङ्काः ॥ ९ ॥
नन्दन्तु योग-निरताः कुल-योग-युक्ता, ह्याचार्य-सामयिक-साधक-पुत्रकाश्च ।
गावो द्विजा युवतयो यतयः कुमार्यो, धर्मे चरन्तु निरता गुरु-भक्त-लोकाः ॥१०॥
नन्दन्तु साधक-कुलान्यलिमात्म-निष्ठाः । पापा जहन्तु समय-द्विषि योगिनीनाम् ।
सा शाम्भवी स्फुरतु काऽपि ममाप्यवस्था, यस्यां गुरोश्चरण-पङ्कजमेव सेव्यम् ॥११॥
याश्चक्र-क्रम-भूमिका-वसतयो नाड़ीषु याः संस्थिताः,
याः कायोद्गत-रोम-कूप-निलया याः संस्थिता धातुषु ।
उच्छ्वासोर्मि-महा-तरङ्ग-निलया निःश्वास-वासाश्च या-
स्ता देव्यो रिपु-पक्ष-भक्षण-परास्तृप्यन्तु मन्त्रार्च्चिताः ॥ १२ ॥
या देव्यः कुल-सम्भवाः क्षिति-गता या देवतास्तोयगा,
या नित्या मुदित-प्रभाः निधि-गता या या भुवि प्रस्थिताः ।
या व्योमाहित-मण्डलामृत-मया याः सर्वगाः सर्वदा-
स्ताः देव्यः कुल-मार्ग-पालन-पराः शान्तिं प्रयच्छन्तु मे ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वे ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगन-तले भू-तले निष्कले वा,
पाताले वा तले वा सलिल-पवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा ।
तीर्थे पीठोप-पीठादिषु च कृत-पदास्ते सुराः सर्व-पूज्या-

स्तृप्यन्तु ज्ञान-देव्यस्त्वलि-बलि-पिशितैर्धूप-दीपादिकेन ॥ १४ ॥
ब्रह्मा श्रीः शेष-दुर्गा-गुह-वटुक-गणा भैरवाः क्षेत्रपाद्या,
रुद्रादित्या ग्रहास्ते वसु-पितृ-मुनयः सिद्धयो गुह्यकाद्याः ।
भूता गन्धर्व-विद्याधर-ऋषि-पितरः किन्नरा यक्ष-नागा,
योगीशाश्चारणाद्याः सुर-वर-निकराः पूजने सन्तु तुष्टाः ॥ १५ ॥
देहस्थाखिल-देवता गज-मुखाः क्षेत्राधिपा भैरवाः
योगिन्यो वटुकाश्च यक्ष-पितरो भूताः पिशाचा ग्रहाः ।
अन्ये भूचर-खेचरा दिशि-चरा वेतालकाश्चेटका-
स्तृप्यन्तां कुल-पुत्रकस्य पितरः पीत्वा समीपे चरुम् ॥ १६ ॥
सत्यं चेद् गुरु-वाक्यमेव चतुरो वेदागमा योगिनी,
मन्त्राश्चेत् पर-देवता यदि भवेद् ब्रह्म प्रमाणं हि चेत् ।
शाक्तीयं यदि दर्शनं भवति चेदाज्ञाप्यमायान्ति चेत् ,
सत्यं चापि च कौल-धर्म परमं स्यान्मे जयः सर्वदा ॥ १७ ॥
नन्दन्तु साधकाः सर्वे नश्यन्तु कुल-दूषकाः ।
अवस्था शाम्भवीयास्तु प्रसन्नोऽस्तु गुरुः सदा ॥ १८ ॥
यद्येषा भैरवी देवी यदि भैरव - शासनम् ।
यद्येष कुल-धर्मः स्यात्तदा नश्यन्तु दूषकाः ॥ १९ ॥
यासामाज्ञा-प्रभावेण स्थापितं भुवन-त्रयम् ।
नमस्ताभ्यः समस्ताभ्यो योगिनीभ्यो निरन्तरम् ॥ २० ॥
पिबन्तु मातरः सर्वाः पिबन्तु कुल-सत्तमाः ।
पिबन्तु भैरवाः सर्वे मम देहे व्यवस्थिताः ॥ २१ ॥
पिबन्तु मातरः सर्वाः समुद्राः स-गणाधिपाः ।
योगिन्यः क्षेत्रपालाश्च मम देहे व्यवस्थिताः ॥ २२ ॥
शिवाद्यवनि-पर्य्यन्तं ब्रह्मादि-स्तम्ब-संयुतम् ।
कालाग्न्यादि-शिवान्तं च जगद् यज्ञेन तृप्यतु ॥ २३ ॥
द्वारस्था मणि-मण्डपस्य परितः श्रीनन्दने कानने ।
शून्यागार-विहार-कन्दर-मठे व्योम्नि श्मशाने स्थिताः ।
कूप-स्थान-गताश्चतुष्पथ-गताः सन्देश-संस्थाश्च ये ।
पञ्चार्थावह-केतु-मान-कुसुमात् गृह्णन्तु ते पान्तु च ॥ २४ ॥

चक्र में स्थित साधकों की चेष्टाएं

शान्ति-स्तोत्र का पाठ कर पूजा-पात्र को उठाकर गुरुदेव अपने शिष्य को प्रसाद दें।

चक्र में सम्मिलित साधकों-द्वारा अपनी अभीष्ट चेष्टा का करना 'प्रौढान्त' उल्लास कहा गया है। इस उल्लास से योगी और योगिनी-मण्डल के प्रमुदित होने पर आनन्द होता है और उल्लासित वीरों में कार्याकार्य का विचार नहीं रहता। इच्छा ही शास्त्र-सम्पत्ति है, अतः उक्त अवस्था में जो शुभ या अशुभ कर्म होते हैं, वे सब देवता-प्रीति के लिए होते हैं। उस समय का वार्तालाप जप, तन्द्रा समाधि, विक्रियायें पूजा, शक्ति-संयोग मोक्ष और भाषण स्तोत्र होता है। अङ्गों का स्पर्श न्यास, भोजन हवन की क्रिया, देखना ध्यान और सोना वन्दना-स्वरूप होता है। इस प्रकार उक्त उल्लास में विविध प्रकार की जो चेष्टा की जाती है, वह सत्क्रिया ही होती है। उसके सम्बन्ध में उचित-अनुचित का विचार जो करता है, वह पाप-भागी होता है। इस चक्र में प्रविष्ट होनेवाले वीर परम योगी होते हैं, जिससे मनुष्य साक्षात् भैरव-स्वरूप को प्राप्त करते हैं। प्रसन्नता, परमानन्द, ज्ञान-वृद्धि, वंशी-वीणादि बजाना, कविता बनाना, रोना, भाषण करना, गिरना, उठना, जँभाई लेना, चलना—ये विक्रियायें योग-समान होती हैं। इस चक्र में वीर और योगिनियाँ मादकता से शिथिल होकर अपने मन के उल्लास के अनुसार आचरण करते हैं। स्वयं के विचार को भूल कर बगल में बैठे हुए साधकों से धीमे-धीमे पूछते हैं और मुख में पात्र डालकर शान्त बैठते हैं। मतवाली कान्ता दूसरे को अपना पुरुष समझ कर उसका सहारा लेती है। उसी प्रकार प्रौढान्त उल्लास से युक्त पुरुष भी करता है। मोह-वश पुरुष-पुरुष का आलिङ्गन करता है। मुग्धा स्त्री अपने पति से पूछती है कि 'तुम कौन हो, मैं कौन हूँ और ये लोग कौन हैं ? किस कार्य से हम आये हैं, किसलिये यहाँ बैठे हैं ? यह उद्यान है, घर है या आंगन ?' मुख में मदिरा को भरकर स्त्रियों को पान कराते हैं। तीक्ष्ण तत्व को अपने मुख में डालते हैं और अपनी प्रिया के मुख में डालते हैं। हे शाम्भवि ! योगी लोग एक दूसरे के पात्रों और खाद्य पदार्थों को ग्रहण करते हैं तथा मद्य-पात्र को शिर पर रख कर नृत्य करते हैं। कुल-शक्तियाँ बिना जाने हुए ताली बजाती हैं और ऐसे गीत गाती हैं, जिनके अक्षर स्पष्ट नहीं होते तथा लड़खड़ाते पैरों से नृत्य करती हैं। मद-मत्त योगी स्त्रियों के ऊपर गिरते हैं और मदाकुल योगिनियाँ पुरुषों के ऊपर गिरती हैं। एक-दूसरे के मनोरथ को पूर्ण करते हुये इस प्रकार की अनेक चेष्टाएँ करते हैं।

मन के विकृत न होने पर देव-भाव

मन के विकार को हटाकर जब उल्लास होता है तब श्रेष्ठ योगी देवता-भाव को प्राप्त करते हैं।

कौलिक की निन्दा करने में दोष

भैरवावेश में आए कौलिकों की जो मूर्ख निन्दा करता है, उसका नाश योगिनियाँ करती हैं, इसमें सन्देह नहीं। चक्र में मधु की मादकता से शिथिल लोगों की न कभी निन्दा करे, न उनका उपहास करे और इस चक्र में हुई बातों को बाहर कभी प्रकट न करे। न उनके प्रति द्रोह करे और न उनका अहित करे। भक्ति से उनका सत्कार करे और प्रयत्न करके उन्हें गुप्त रखे।

कौलिक का सम्मान करने का फल

चक्र में मदाकुल साधकों को देखकर देवता-बुद्धि से ध्यान करे और प्रसन्न होकर भक्ति-पूर्वक उनकी वन्दना करे। इस प्रकार जो कौलिक चक्र का दर्शन भक्ति-पूर्वक करता है, वह योगिनी-पद को पाता है और करोड़ों व्रत-तीर्थ-तप-दान-यज्ञादि का फल प्राप्त करता है।

उन्मना उल्लास, अनवस्था और शाम्भवी मुद्रा

'उन्मना' नामक छठे उल्लास से युक्त होने पर गिरने और उठने की दो क्रियायें तथा बारम्बार मूर्छा होती है। पर-ब्रह्म के अनुसन्धान की इच्छा से युक्त इन दो क्रियाओं के चिर काल तक सम्पन्न होने पर देह और इन्द्रियों से परे अनवस्था होती है, जो सातवें उल्लास में है। परा-मन्त्र-स्वरूप होकर वह परा-मूर्च्छना को प्राप्त करता है क्योंकि मूर्च्छना का सान्निध्य ही मुक्ति का मूल कहा गया है।

बाह्य दृष्टि निमेष और उन्मेष से रहित होकर लक्ष्य अन्तर्मुख हो जाता है। यही शाम्भवी मुद्रा है, जो सब तन्त्रों में गुप्त है। इससे उल्लासित वीर साक्षात् शिव ही हैं, इसमें सन्देह नहीं। अपने अनुष्ठान में तल्लीन होकर वे और सब कुछ भूल जाते हैं। इस अवस्था में वे मन-वचन से परे परम सुख को प्राप्त करते हैं। यह सुख शर्करा और दुग्ध के स्वाद के समान स्वयं ही अनुभव द्वारा ज्ञेय है। वह सुख किस प्रकार का होता है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पुलक आदि के द्वारा जो सुख-पूर्ण अवस्था दिखाई देती है, वह 'ब्रह्म-ध्यान' कहलाती है। इस ध्यान में देवावेश करानेवाला जो सुख होता है,उसका वर्णन नहीं हो सकता। उसमें विशेष ज्ञान प्राप्त होता है। ब्रह्म-ध्यान के परमानन्द में तल्लीन होनेवाले मनुष्य बड़े पुण्यवान होते हैं। उस ध्यान के क्षण भर के लिए भी अन्तर्हित होने पर वे शोक करते हैं और हत-प्रभ हो जाते हैं। सुख का यह महान् फल सातवें उल्लास से युक्त तुम्हारे भक्तों को मिलता है।

सप्तमोल्लास में आठों प्रत्यय, आठों अवस्थाएं और आठों सिद्धियां

सातवें उल्लास में त्रिकाल-ज्ञान से उत्पन्न प्रत्यय होते हैं और कम्प आदि अवस्था होती है। अधिक कहने से क्या, अणिमादि आठों सिद्धियां सेविका बन जाती हैं और चिर काल तक घर में रहकर सेवा करती हैं। जो शुभ गुण पञ्च-मुख परमेश्वर के शरीर में हैं, वे तत्व-ज्ञान से युक्त गुण कुल-तत्व के ज्ञाता में होते हैं।

१ आरम्भ, २ तरुण, ३ यौवन, ४ प्रौढ और ५ प्रौढान्त—ये उल्लास जाग्रत् कहे गये हैं। ६ उन्मना उल्लास स्वप्न और ७ अनवस्था उल्लास सुषुप्ति है, जो तीनों अवस्थाओं से युक्त है। इन सातों उल्लासों को जो जानता है, वह मुक्त है और कौलिक है।

भैरवी-चक्र में जाति-भेद नहीं

भैरवी-चक्र में प्रविष्ट सभी वर्ण द्विजाति-वत् होते हैं, जाति-भेद नहीं रहता। चक्र के समाप्त होने पर सभी वर्ण अलग-अलग हो जाते हैं अर्थात् सामाजिक अनुशासन पुनः लागू हो जाता है। स्त्री हो या पुरुष, चाण्डाल हो या उत्तम द्विज, इस चक्र में कोई भेद नहीं रहता। सभी शिव-समान ही माने जाते हैं। जिस प्रकार झरने आदि के जल गङ्गा में पहुंच कर समान भाव को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार श्री चक्र में सभी मनुष्य एकत्व को पाते हैं। दूध के साथ जल जिस प्रकार दूध ही होता है, उसी प्रकार श्रीचक्र के मध्य जाति-भेद नहीं रहता। स्वर्गादि पुण्य लोकों में जैसे देवताओं के सिवा अन्य कोई नहीं है, वैसे ही चक्र के मध्य में सभी मनुष्य देवता ही होते हैं। इस चक्र में जाति-भेद नहीं है, सभी शिव-समान माने जाते हैं। वेद में भी इस प्रकार की स्थितिवाले सभी ब्रह्म-स्वरूप कहे गए हैं। यहाँ अधिक कहने से क्या, हे कुलेश्वरि ! चक्र के मध्य में सभी पुरुष मेरे स्वरूप और स्त्रियां तुम्हारे स्वरूप होती हैं।

चक्र में जाति-भेद मानने से दोष

चक्र के मध्य में जो मूर्ख जाति-भेद मानता है, उसे योगिनियां खा जाती हैं और उसे शाप देती हैं।

चक्र में स्त्री-पुरुषों को बैठाने की विधि

चक्र में स्त्रियों और पुरुषों को चाहे अलग स्थान में बिठावें या दम्पति के रूप में पंक्ति में अथवा चक्राकार स्थान दे। शिव-शक्ति के रूप में उन सबकी चक्र में पूजा करे। हम दोनों या लक्ष्मी-नारायण अथवा सरस्वती-ब्रह्मा जिस प्रकार संयुक्त हैं, उसी प्रकार सशक्ति वीर होता है।

संसार का शिव-शक्त्यात्मक स्वरूप

सहस्रों मद्य-घटों और सैकड़ों मांस-राशियों से भी मैं भग-लिङ्गामृत बिना सन्तुष्ट नहीं होती। यह संसार न चक्र-चिह्नवाला है, न पद्म-चिह्नवाला और न वज्र-चिह्नवाला है। लिङ्ग-चिह्न और भग-चिह्नवाला ही यह है। अतः यह संसार शक्ति-शिवात्मक है।

शिव-शक्ति-समायोग से समाधि

जिस समय शिव और शक्ति का समायोग होता है, वही कुल-धर्म-निष्ठ साधकों का सन्ध्या-काल है, जिसमें समाधि की स्थिति का अनुभव होता है।

कामुकता का निषेध

काम-वासना से युक्त होकर अदीक्षित स्त्रियों में न जाय। संस्कार से शुद्ध स्त्रियों में ही जाना चाहिए। इस प्रकार मैंने तीनों तत्व, उल्लास और पान के भेदादि का वर्णन संक्षेप में किया। अब हे कुलेशानि ! तुम क्या सुनना चाहती हो ?

नवाँ उल्लास—योग-योगीश-लक्षण और कौल-पूजा

श्री देवी बोलीं—हे कुलेश ! योग और योगीश के लक्षण तथा कुल-भक्त की पूजा करने का फल बताइये।

ध्यान के दो भेद—१ स्थूल, २ सूक्ष्म

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो, जो तुमने मुझसे पूछा है, उसे मैं कहूँगा। उसके सुनने मात्र से ।ाग साक्षात् प्रकट होता है। ध्यान स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार का कहा गया है। साकार ध्यान स्थूल और निराकार ध्यान सूक्ष्म कहा जाता है। स्थूल ध्यान से बुद्धि निश्चित होती है और सूक्ष्म ध्यान से भी सुस्थिति होती है।

हाथ-पैर, पेटादि अङ्ग और अस्थि से रहित सर्व-तेजोमय, सच्चिदानन्द परमेश्वर का ध्यान करे। न उसका उदय होता है, न अस्त। न बढ़ता है, न घटता। वह स्वयं प्रकाश है और बिना साधन के अन्यों को प्रकाशित करता है।

ब्रह्म-ज्ञान

सत्ता मात्र उस अदृश्य, अवस्था-हीन रूप का केवल मन से जो अनुभव होता है, उस ज्ञान को 'ब्रह्म' कहा गया है।

योगी का लक्षण

वायु-सञ्चार को रोक कर, पत्थर के समान स्थिर हो, परम जीव के एक धाम को जाननेवाला 'योगी' और 'योग-विद्' कहलाता है।

समाधि का लक्षण

जिस ध्यानावस्था में पदार्थ मात्र भासित हो, शान्त सागर के समान स्थिति हो और रूप का अभाव हो जाय, वह 'समाधि' कही जाती है।

जीवन्मुक्ति का लक्षण

किसी भी चिन्तन से तत्व प्रकाशित नहीं होता, वह स्वयं ही प्रकाशित होता है। तत्व के स्वयं प्रकाशित होते ही तत्क्षण उसमें तन्मय हो जाय। स्वप्न और जाग्रत् अवस्थाओं में जो सोए हुए के समान व निःश्वास और श्वास से रहित रहता है, वह निश्चय ही 'मुक्त' है। इन्द्रिय-समूह को निष्क्रिय रखकर अपनी आत्मा में मन को जो लीन रखता हुआ मृत-वत् रहता है, वह साक्षात् 'जीवन्मुक्त' कहा जाता है।

समाधिस्थ का लक्षण

न सुनता है, न देखता है, न सूंघता है, न स्पर्श करता है, न सुख-दुःख को जानता है, न मन में कोई सङ्कल्प होता है, न कुछ भी जानता है और न काष्ठ-वत् कुछ अनुभव करता है–इस प्रकार जो शिव में अपनी आत्मा को लीन रखता है, वह संसार में 'समाधिस्थ' कहा जाता है।

जीवात्मा और परमात्मा में अभेद

जिस प्रकार जल में जल, दूध में दूध और घी में घी डालने से कोई अन्तर नहीं पड़ता, उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध है। जिस प्रकार ध्यान की शक्ति से कीड़ा भी भौंरा बन जाता है, उसी प्रकार समाधि की शक्ति से मनुष्य ब्रह्म-भूत हो जाता है। दूध से निकाला हुआ घी जैसे पुनः उसमें डालने से पहले जैसा मिश्रित नहीं होता, वैसे ही गुणों के द्वारा अलग की गई आत्मा इस संसार में अलग कही जाती है। जिस प्रकार गहरे अँधेरे में यहाँ कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, उसी प्रकार अमनस्क योगी प्रपञ्च को नहीं देखता।

ध्यान का लक्षण

जैसे आँख बन्द रहने पर प्रपञ्च नहीं दिखाई देता, वैसे ही आँख खुली होने पर भी वह दिखाई न दे, यही ध्यान का लक्षण है।

परम तत्व-ज्ञान का फल

जिस प्रकार लोग अपने देह की खुजली का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार परंब्रह्म-स्वरूपी साधक क्रिया-शील विश्व को जानता है। वर्णों से अतीत परम तत्व को जान लेने पर सभी मन्त्र अपने अधिष्ठातृ देवताओं सहित साधक के दास बन जाते हैं। आत्मा से एक-भाव से निष्ठा रखनेवाले साधक की जो भी चेष्टा होती है, वह पूजा-स्वरूपा ही होती है; जो भी बात वह करता है, वह मन्त्र-स्वरूप और जो कुछ देखता है, वह ध्यान-स्वरूप होता है। परमात्मा के ज्ञात होने पर देहाभिमान दूर हो जाता है और जहाँ कहीं भी ऐसे साधक का मन जाता है, वहाँ उसे समाधि प्राप्त होती है। उसके हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है और उसके सभी सन्देह दूर हो जाते हैं। परमात्मा को देख लेने से उसके सभी कर्मों का क्षय हो जाता है। योगीन्द्र को जैसा निर्मल परम पद प्राप्त होता है, उसके समक्ष देवासुर-पद भी प्राप्त होने पर ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। जो सर्व-व्यापी, शान्त, आनन्द-मय, अव्यय को देख लेता है, उसे कुछ भी पाने या जानने को नहीं बचता। ज्ञान-विज्ञान के प्राप्त होने पर, हृदय में ज्ञेय की स्थिति होने पर और शान्ति-पद के मिल जाने पर हे देवि ! न योग की आवश्यकता रहती है, न धारणा की। परब्रह्म को जान लेने पर सभी नियम समाप्त हो जाते हैं। सुगन्धित वायु के मिलने पर पंखे की क्या आवश्यकता ? न आसन लगाना पड़ता है, न प्राणायाम करना होता है। यम-नियम भी नहीं रहते। स्वयं ही आत्म-दर्शन होता रहता है।

योग का लक्षण

योग के मर्मज्ञों ने जीव और आत्मा के ऐक्य को ही 'योग' कहा है। न पद्मासन से और न नासिका के अग्रभाग को देखने से योग होता है। श्रद्धापूर्वक क्षण मात्र के लिये भी परम पद का ध्यान करने से जो महान् पुण्य होता है, उसकी गणना नहीं की जा सकती। जो क्षण भर के लिए यह आत्म-चिन्तन करता है कि 'मैं ब्रह्म हूँ', वह अपने सभी पापों को उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अँधेरा नष्ट होता है। व्रत, यज्ञ, तप, तीर्थ, दान, देव-पूजादि से जो फल होता है, उससे कोटि गुना फल तत्व के ज्ञाता को मिलता है।

साधक की चार अवस्थायें

१ सहजावस्था उत्तम है। २ ध्यान-धारणा की अवस्था मध्यम है। ३ जप-स्तुति की अवस्था अधम है और ४ होम-पूजा की अवस्था अधम से भी अधम है। तत्व का चिन्तन करना उत्तम है। जप की चिन्ता करना मध्यम है। शास्त्र की चिन्ता करना अधम और संसार की चिन्ता करना अधम से भी अधम है। कोटि पूजाओं के बराबर स्तोत्र-पाठ है, कोटि स्तोत्र-पाठ के बराबर जप है, कोटि जप के बराबर ध्यान है और कोटि ध्यान के बराबर लय (समाधि) है। न ध्यान से श्रेष्ठ मन्त्र है, न आत्मा से श्रेष्ठ देवता है, न अनुसन्धान से श्रेष्ठ पूजा है और न तृप्ति से श्रेष्ठ कोई फल है। क्रिया की हीनता ही श्रेष्ठ पूजा है, मौन ही श्रेष्ठ जप है, चिन्ता-हीनता ही श्रेष्ठ ध्यान है और इच्छा-रहित होना ही श्रेष्ठ फल है।

तत्व-ज्ञानी की उपासना-विधि

मन्त्रोदक के बिना सन्ध्या, पूजा और होम के बिना जप—इस प्रकार योगी नित्य उपचारों के बिना पूजा करे। सङ्ग-हीन और उपाधियों से रहित होकर निज स्वरूप में तल्लीन रहता हुआ योगी परम तत्व का ज्ञाता होता है।

जीव और परमात्मा का स्वरूप

हे देवि ! देह देवालय है और जीव सदाशिव है। अज्ञान-रूपी निर्माल्य को छोड़कर 'सोऽहं'—भाव से पूजन करे। जीव शिव है, शिव जीव है—वह जीव केवल शिव है। पाशों से बँधा हुआ 'जीव' माना जाता है और पाशों से मुक्त 'सदाशिव' कहलाता है। जिस प्रकार भूसी से युक्त धान होता है और भूसी के दूर हो जाने पर चावल कहलाता है, उसी प्रकार कर्मों से बँधा हुआ 'जीव' और कर्मों से छूटा हुआ 'सदाशिव' माना जाता है।

अधिकारी-भेद से देवता का स्थान

विप्रों का देवता अग्नि में, मनीषियों का हृदय में, अल्प-बुद्धि लोगों का मूर्तियों में और आत्म-ज्ञानियों का सर्वत्र रहता है।

तत्वज्ञ योगी के लक्षण

जो निन्दा-स्तुति, सुख-दुःख, शत्रु-मित्र में समान भाव रखता है, वही 'योगीन्द्र' है। इच्छा-हीन, सदा सन्तुष्ट, सम-दर्शी, जितेन्द्रिय, देह में और परदेश के समान रहनेवाला परम तत्त्व का ज्ञाता 'योगी' है। सङ्कल्प-विकल्प से रहित और उपाधि-वस्त्रादि से उदासीन, अपने स्वरूप में तल्लीन, परम तत्त्व का ज्ञाता 'योगी' है। हे कुलेशानि ! लँगड़े, अन्धे, बहरे, नपुंसक, पागल और मूर्खादि के समान तत्त्वज्ञ 'योगी' निवास करता है। पञ्च-मुद्राओं (द्रव्यों) से उत्पन्न परमानन्द में मग्न रहनेवाला योगीन्द्र सर्वत्र आत्मा को अपने को देखता रहता है। अलि (मद्य), मांस और अङ्गना-सङ्ग (मैथुन) में जो सुख मिलता है, वह ज्ञानियों के लिये तो पुण्य है किन्तु मूर्खों के लिये पाप।

कुल-योगी के लक्षण

सदा मांस-मद्य के उल्लास में रहनेवाला, सदा परम तत्त्व का चिन्तन करनेवाला और सदा संशयों से दूर रहनेवाला 'कुल-योगी' कहा जाता है। मद्य-पान करता हुआ, मांस खाता हुआ, स्वेच्छाचार में लगा हुआ और 'मैं', 'तुम' तथा 'वह' में ऐक्य-भाव का चिन्तन करता हुआ वह सदा सुखी रहता है। मांस और मद्य की सुगन्धि से जिसका मुख रहित है, वह प्रायश्चित्त का भागी होता है। उसका त्याग करे, वह 'पशु' ही है, इसमें सन्देह नहीं। जब तक मद्य की गन्ध है, तब तक साधक स्वयं पशु-पति-स्वरूप है। मद्य-मांस की सुगन्ध बिना साक्षात् पशु-पति भी पशु के समान होते हैं।

कौलिक के लिये विधि-निषेध नहीं

संसार में निकृष्ट को उत्कृष्ट और उत्कृष्ट को निकृष्ट मानना—महात्मा भैरव ने इसी को 'कुल-मार्ग' निर्दिष्ट किया है। अनाचार सदाचार है, अकार्य ही उत्तम कार्य है, असत्य भी कौलिकों के लिये सत्य होता है। अपेय पेय, अभक्ष्य भक्ष्य और अगम्य भी कौलिकों के लिये गम्य होता है। हे कुलेश्वरि ! कौलिकों के लिये न विधि है, न निषेध; न पुण्य है, न पाप और न स्वर्ग है, न नरक। अनभिज्ञ विशेषज्ञ, दरिद्र धनी और नाशमान होते हुये भी कौलिक वृद्धि को प्राप्त करते हैं। शत्रु भी मित्र बन जाते हैं, राजा प्रत्यक्ष सेवा करते हैं और सभी लोग कौलिकों को अपना बन्धु मानते हैं। प्रतिकूल अनुकूल हो जाते हैं, सभी अभिमानी प्रणाम करते हैं और बाधा डालनेवाले कौलिकों का काम बनानेवाले हो जाते हैं। गुण-हीन गुणी, अकुलीन कुलीन और अधर्मी भी कौलिकों के लिये धर्मवान् बन जाते हैं। मृत्यु वैद्य बन जाती है, घर साक्षात् स्वर्ग हो जाता है और स्त्रियों का सङ्ग कौलिकों के लिये पुण्य-कारक हो जाता है। यहाँ अधिक कहने से क्या, हे प्रिये ! कुल-योगीश्वर के सभी सङ्कल्प सिद्ध होते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

कुल-योगी के आचरण

विविध वेष-भूषा में, लोगों के हित-कारी योगी-जन अज्ञात रूप से इस पृथ्वी पर भ्रमण करते रहते हैं। हे कुलेश्वरि ! वे एक बार भी अपने को प्रकट नहीं करते और उन्मत्त, मूक, जड़ के समान लोकों के बीच निवास करते हैं। इस संसार में वे अलक्ष्य ही रहते हैं, जैसे आकाश में सूर्य-चन्द्र की गति। नक्षत्रों और ग्रहों के समान ही कुल-योगियों का हाल है। जैसे आकाश में पक्षियों की और जल में जलचर प्राणियों की गति दिखाई नहीं देती, वैसा ही योगियों का आचरण है। 'कुल-योग' के मर्मज्ञ असन्त के समान बोलते हैं, मूर्खों के समान घूमते-फिरते हैं और पापियों के समान दिखाई देते हैं, जिससे लोग उनकी उपेक्षा करें और उन्हें किसी सङ्ग में न पड़ना पड़े। वे कुछ भी नहीं बोलते। मुक्त होता हुआ भी बच्चे के समान क्रीड़ा करता है, मूर्ख के समान आचरण करता है और उन्मत्त के समान बात करता है। जिससे लोग हँसें, निन्दा करें और दूर से ही देखकर चले जायँ—ऐसा आचरण योगी करते है। कहीं शिष्ट-रूप में, कहीं भ्रष्ट-रूप में, कहीं भूत-पिशाच के समान—इस प्रकार योगी नाना वेश धारण कर पृथ्वी पर घूमता रहता है। योगी लोक-कल्याण के लिये भोग करता है, अपनी इच्छा से नहीं। सभी लोगों पर अनुग्रह करते हुये वह पृथ्वी पर क्रीड़ा करता है। जैसे सूर्य सभी को सोख लेता है और अग्नि सभी को जलाकर खा जाता है, वैसे ही योगी सभी भोगों को भोग कर भी पापों से लिप्त नहीं होता। जैसे वायु सभी को छूता है, आकाश सभी जगह है और नदी में सभी नहाते हैं, वैसे ही योगी सदा पवित्र रहता है। जैसे गाँव में गया हुआ जल नदी से मिलने पर पवित्र हो जाता है, वैसे ही म्लेच्छ के घर का अन्नादि योगी के हाथ में पहुँचने पर पवित्र हो जाता है। हे देवेशि ! कुल-ज्ञान के

मर्मज्ञ जिस प्रकार आचरण करते हैं, उसी को आत्म-कल्याणेच्छु विद्वान् आदर देते हैं। जिस मार्ग से योगीश जाते हैं, वही श्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि सूर्य जिधर निकलते हैं, उधर ही पूर्व दिशा कही जाती है। जैसे हाथी जिधर जाता है, उधर ही मार्ग बन जाता है, वैसे ही कुल-योगी जैसा आचरण करता है, वही दूसरों के लिये मार्ग-दर्शक होता है।

टेढ़ी नदी को सीधा करना, उसके प्रवाह को रोकना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार स्वेच्छा से विहार करनेवाले शान्त योगी को मना करने में कोई समर्थ नहीं है। जैसे मन्त्र-बल से युक्त खिलाड़ियों द्वारा नहीं देखा जाता, वैसे ही ज्ञानी इन्द्रिय-रूपी सर्पों से क्रीडा करते नहीं दिखाई देता।

उत्तम कौलिक के लक्षण

दु:खों से निवृत्त, सन्तुष्ट, निर्द्वन्द्व और मत्सर-हीन होकर जो कुल-ज्ञान में तन्मय, शान्त और सद्-भक्त होते हैं, वे 'कौलिक' हैं। मद, क्रोध, दम्भ, आशा, अहङ्कार से हीन, सत्यवादी कौलिकेन्द्र जितेन्द्रिय होते हैं। कुल की प्रशंसा होने पर वे रोमाञ्चित हो उठते हैं, उनका स्वर गद्गद हो जाता है और आनन्दाश्रु गिरने लगते हैं। हे देवि ! ये ही उत्तम कौलिक कहे गये हैं। संसार में शिवोक्त कुल-धर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ है, ऐसे निश्चय से युक्त बुद्धिवाले उत्तम कौलिक कहे जाते हैं। जो कुल-तत्व का ज्ञाता है, कुल-शास्त्र का मर्मज्ञ है, वह कुलार्चन में तत्पर रहता है और हे प्रिये ! वही कौलिक है, अन्य नहीं। कुल-भक्तों, कुल-ज्ञानियों, कुलाचार वालों और कुल-व्रतों को देखकर जो प्रसन्न होता हैं, वही कौलिक मुझे प्रिय है। तत्व-त्रय को स्वीकार करने से, मूल-मन्त्र के तत्त्वार्थ को जाननेवाला, देवता और गुरु का भक्त दीक्षा के द्वारा कौलिक होता है। सारे लोकों में कुलाचार्य का दर्शन दुर्लभ है। पुण्यों के सुफलित होने पर ही उसका दर्शन मिलता है, अन्यथा नहीं।

कौलिक की महिमा

स्मरण करने से, कीर्ति-गान से, दर्शन करने से, वन्दना करने से और वार्तालाप से कुल-धर्मिष्ठ इच्छा मात्र से चाण्डाल को भी पवित्र बना देता है। हे देवि ! जहाँ कुल-ज्ञानी है, वहीं मैं तुम्हारे साथ रहता हूँ, भले ही वह सर्वज्ञ हो या मूर्ख, उत्तम हो या अधम। न मैं कैलास में रहता हूँ, न मेरु में और न मन्दर में। कुलज्ञ जहाँ रहते हैं, वहीं मैं रहता हूँ। माहेश्वर साधक जहाँ हो, वहाँ दूर होते हुये भी जाना चाहिये और प्रयत्न करके उसका दर्शन करना चाहिये क्योंकि वहीं मैं स्थित हूँ। कुल-देशिक बहुत दूर स्थित हों, तो भी उनका दर्शन करना चाहिये और पशु पास ही स्थित हो, तो भी उसे देखना नहीं चाहिये। कुल-ज्ञानी जिस देश में निवास करता है, वह पुण्य-शाली होता है। उसका दर्शन-पूजन करने से इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार होता है। अपनी सन्तान के घर में कुल-ज्ञानी को बैठा हुआ देखकर उसके पितर लोग कहते हैं कि 'हम परम गति प्राप्त करेंगे।' किसानों को अच्छी वर्षा से जैसे सन्तोष मिलता है, उसी प्रकार पितरों को आशा होती है कि 'हमारे कुलों में भी पुत्र या पौत्र कौलिक होगा।' इस संसार में निश्चय ही वह पुरुष क्षीण-पाप होकर धन्य हो जाता है, जिसके पास कुलाचार्य प्रसन्नता से आते हैं। कौलिकेन्द्र के निकट आने पर हे देवि ! योगिनियाँ योगियों सहित सहर्ष पास आती हैं। कुल-योगीन्द्र में प्रवेश कर पितृ-देवता भोग ग्रहण करते हैं। अत: कुल के मर्मज्ञों का पूजन भक्ति-पूर्वक करना चाहिये।

कौलिक-पूजा का फल

हे देवि ! तुम्हारी अर्चा करके जो तुम्हारे भक्तों का अर्चन नहीं करते, वे पापी तुम्हारे प्रसाद के अधिकारी नहीं होते। सामने रखा हुआ नैवेद्य देखकर तुम स्वीकार करती हो और भक्त की जिह्वा के अग्र भाग से रसों को मैं ग्रहण करता हूँ। अतः तुम्हारे भक्त की पूजा होने से हे देवि ! मैं पूजित होता

हूँ, इसमें सन्देह नहीं। इसलिये जो मेरी प्रसन्नता चाहते हैं, उन्हें तुम्हारे भक्तों की ही पूजा करनी चाहिए। जो कुछ कुल-निष्ठों के लिए किया जाता है, वह देवताओं के लिए होता है। सुरा कुल की प्रिया हैं, अतः सभी को उससे कौलिक का अर्चन करना चाहिये। मैं अन्य कहीं भक्ति-पूर्वक सुपूजित होने पर उतना सन्तुष्ट नहीं होता, जितना कौलिकेन्द्र के पूजित किए जाने पर होता हूँ। कौलिकेन्द्रों की पूजा करने से जो फल मिलता है, वह तीर्थ, तप, दान, यज्ञ, व्रतों से नहीं मिलता।

कुलज्ञ की उपेक्षा करने से हानि

जो कुल के ज्ञाता का अपमान करता है, उसके द्वारा किया गया अभीष्ट दान, हवन, पूजन और जप सब व्यर्थ होता है। जो कुल-धर्म में प्रवेश कर कुलाचार को नहीं जानता, उसका घर श्मशान-वत् और वह स्वयं चाण्डाल से भी अधिक पतित होता है। कुल-निष्ठों को छोड़कर जो अन्य को दान देता है, उसका वह दान निष्फल होता है और दान देनेवाला नरक में जाता है। टूटे हुए बर्तन में जल, चट्टान में बोए हुये बीज और राख में किए गये हवन के समान अकौलिक को दिया गया दान व्यर्थ होता है।

कुल-योगी को दान देने की विधि

यथा-शक्ति जो कुछ भी प्रेमपूर्वक विशेष तिथियों में कुल-योगी को दान किया जाता है, उसके फल का वर्णन नहीं किया जा सकता। हे देवि ! जो शुभ दिन में कुल-ज्ञानियों को स्वयं बुलाकर देवता मानकर गन्ध-पुष्पाक्षत आदि से उनकी पूजा कर पञ्च-मकारों से भक्ति-पूर्वक उन्हें सन्तुष्ट करता है, तो उनके सन्तुष्ट होने पर मैं और सभी देवता सन्तुष्ट होते हैं। मधु-मत्त कुल-योगी को जो शक्ति प्रदान करता है, उसके पुण्य की गणना नहीं की जा सकती। वीर-चक्र में अर्पित मधु परलोक के पथ को अनायास ही प्रशस्त करता है। पापाचार से युक्त और सभी लोकों से बहिष्कृत मद्य कुल-योगीश्वर को अर्पित करने पर 'कुल-द्रव्य' बन जाता है। जिस देश में कुल-पूजा करनेवाला वीर निवास करता है, वह देश पवित्र हो जाता है। फिर उसके समक्ष रहने की महिमा क्या कही जाय। कौलिकेन्द्र के एक बार भोजन करने से पुण्य कोटि गुना अधिक हो जाता है। फिर उसके बहुत बार भोजन करने के पुण्य की तो गणना ही नहीं हो सकती। अतः सब प्रयत्न करके, सभी अवस्थाओं में, सदैव कुल-धर्म में तत्पर हो और कुल-ज्ञानी का अर्चन करे।

वर्णाश्रम के आचार का पालन

ज्ञानी हो, चाहे अज्ञानी—सभी प्रकार की मुक्ति के लिये, जब तक शरीर की स्थिति है, तब तक अपने अपने वर्ण और आश्रम के आचार का पालन करना चाहिए।

कर्म करने का उद्देश्य

कर्म के द्वारा अज्ञान का उन्मूलन होने पर ज्ञान के द्वारा 'शिवत्व' की प्राप्ति होती है। शिव से ऐक्य स्थापित करनेवाले की ही मुक्ति होती है। अतः कर्म का समुचित रूप से पालन करे। अनिन्द्य कर्मों को या नित्य कर्मों को करे। कर्म-मुक्त होकर सुख की आकांक्षा करनेवाला कर्मनिष्ठ होकर सुख से रहे।

कर्म-योग का अधिकारी

देह-धारी सभी कर्मों का त्याग नहीं कर सकता। जो कर्मों के फल का त्याग करता है, वही 'त्यागी' कहा जाता है। इन्द्रियां अपने कर्मों में लगी रहती हैं, ऐसा विचार कर जो अहं-भाव को छोड़कर कर्म करते हैं, वे उनमें लिप्त नहीं होते। ज्ञान हो जाने पर क्रियमाण कर्म तत्वज्ञ को स्पर्श नहीं करते,

जिस प्रकार जल कमल की पंखुड़ियों से दूर रहता है। इस प्रकार कर्म-निष्ठ के पुण्य और पाप कर्मों का क्षय हो जाता है और क्रियमाण कर्मों में वह पुनः लिप्त नहीं होता। तत्व-ज्ञान में मग्न साधक को सहजानन्द का लाभ होता है। वह विद्वान् सब सङ्कल्पों का त्याग कर कर्म को छोड़ देता है।

अनधिकारी द्वारा कर्म-त्याग निषिद्ध

जो मूर्ख व्यर्थ ही कर्म-काण्ड को छोड़ देते हैं, वे पाखण्डी और अहङ्कारी नरक में जाते हैं।

तत्वज्ञ ब्रह्म-ज्ञानी ही कर्म से मुक्त

जिस प्रकार फल को पाकर वृक्ष फूल को छोड़ देते हैं, उसी प्रकार तत्व को पाकर योगी कर्मानुष्ठान का त्याग करते हैं। जिनके हृदय में ब्रह्म स्थित है, वे अयुत अश्वमेधों को करके या अयुत ब्रह्म-हत्याओं से युक्त होकर भी उनके पुण्य या पापों से लिप्त नहीं होते। पृथ्वी पर जो कर्म जीभ और उपस्थ के लिये हैं, उन कर्मों से उन अङ्गों के त्यागी का क्या सम्बन्ध ?

इस प्रकार योग और योगीश के कुछ लक्षण तुमसे संक्षेप में कहे। हे कुलेशानि ! तुम और क्या सुनना चाहती हो ?

दसवाँ उल्लास : विशेष दिवसों के पूजन

श्री देवी ने कहा—हे कुलेश ! मैं विशेष दिनों की पूजा के विषय में सुनना चाहती हूँ। साथ ही उस पूजा का फल भी मुझे बताइए।

पूजा के तीन भेद

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो, जो तुमने पूछा है, उसे मैं कहूँगा। उसके सुनने मात्र से पापों से मुक्ति मिलती है। १ नित्य-पूजा उत्तम है, २ पर्व-पूजा मध्यम है और ३ मानस पूजा अधम है। एक मास से अधिक समय पूजा किये बिना बीत जाने पर साधक 'पशु' हो जाता है। मास भर बाद विहित मादि (पञ्चमकार) द्रव्यों से पूजन होने पर यदि 'पशु' की उसमें सम्मिलित होने की इच्छा हो, तो उसकी पुनः दीक्षा करे। मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन—ये पञ्च-मकार देवता को प्रसन्न करते हैं।

तृष्णा-वश मकारादि का सेवन पाप

पञ्च-मकारों का सेवन देवता की प्रसन्नता के लिए यथा-विधि करना चाहिये। यदि तृष्णा-वश उनका सेवन कोई करता है, तो वह पापी होता है।

पूजा की तिथियां

कृष्णाष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति—इन पुण्य दिनों में पाँच पर्व होते हैं। गुरु, परम गुरु, परापर गुरु, मानवौघादि पुरुषों के और अपने जन्म-दिन के अवसर पर पूजन करे। सम्पत्ति मिलने या लाभ होने पर, तप-दीक्षा-व्रत-आदि के उत्सव में, किसी पीठ में जाने पर, वीर-पीठ में, अपने कुटुम्बी के मिलने पर, देशिक के आने पर, पुण्य तीर्थ या देवता का दर्शन होने पर पूजन करे। हे देवेशि ! इस प्रकार के दिनों में और विशेष दिनों में जैसा धन हो, जैसी श्रद्धा हो, जैसा द्रव्य हो, जैसा उचित हो, जैसा समय हो, जैसा देश हो, वैसा ही पूजन करना चाहिये।

आचार्य या स्वयं द्वारा चक्र-पूजा

चक्र-पूजा आचार्य के द्वारा विधिपूर्वक कराये अथवा स्वयं ही विन्दु-पूजा में तत्पर होकर चक्र-पूजा करे। ऐसा करनेवाला सत्य-लोक को प्राप्त होता है, जहाँ से पुनर्जन्म नहीं होता। जो कौलिक मोह-वश पूजा नहीं करता, उसे देवता का शाप लगता है। मास में या तीन मास में या छः मास में या एक वर्ष में भक्ति-पूर्वक श्रीगुरुदेव का पूजन करे। वे न हों, तो उनकी पत्नी, पुत्रादि की पूजा करे। वे भी न हों, तो उनके कुलज्ञ शिष्य को या अन्य कुल-योगी को कुल-पूजा-पूर्वक कुल-द्रव्यों से सन्तुष्ट करे।

रोगादि की शान्ति के लिए योगिनी-पूजा

रोगों, आपत्तियों, कठिन परिस्थितियों में उनके दोषों की शान्ति के लिए योगिनी-समूह का पूजन करे।

श्रीचक्र का लक्षण

जहाँ आम्नाय-तत्त्व का ज्ञाता एक कुलाचार्य हो और तीन, चार या पाँच कौलिक तथा शक्तियाँ हों, वहाँ उनकी अलग-अलग या मिथुनाकार-रूप में गन्धाक्षत-पुष्पादि से पूजा कर उन्हें छः रसों से युक्त भक्ष्य-भोज्य मांसादि पदार्थों से सन्तुष्ट करे। प्रौढोल्लास के सहित यदि वे रहते हैं, तो इसे 'श्री-चक्र' कहा जाता है।

नौ कुमारियों की पूजा-विधि और उसका फल

आश्विन मास में नौ कुमारियों की पूजा करे। शुद्ध मन से साधक प्रातःकाल भक्ति-पूर्वक उन्हें निमन्त्रण दे। प्रतिपदा के दिन एक वर्ष की मनोहर और शुभ लक्षणवाली बालिका को स्नान कराकर शुद्ध आत्मा से साधक क्रमपूर्वक पूजा करे। तैल, स्नानादि से शुद्ध उस बाला को पूजा-गृह में लाकर देवता के समीप बैठाकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, कुल-दीपकों से उसकी पूजा करे। फिर दूध, घी, मधु, मांसादि भोज्य अन्न-पानादि और केला, नारियल आदि फलों से उसे सन्तुष्ट करे। स्वयं शक्ति-सहित प्रौढ़ोल्लास से युक्त होकर, हे देवि ! उस सुशोभिता बाला को देखता हुआ अपनी इष्ट-देवता का स्मरण करे और यथा-शक्ति मन्त्र का जप करे। तब उसे देवता मानते हुए नमस्कार कर विदा करे।

द्वितीया तिथि में दो वर्ष की और पूर्व-तिथि में पूजिता एक वर्ष की कन्या का पूजन पूर्ववत् करे। इसी क्रम से नवमी के दिन एक वर्ष से नौ वर्ष तक की कन्याओं की पूजा करे। ये नौ कन्याएँ क्रमशः १ सरस्वती, २ रमा, ३ गौरी, ४ दुर्गा, ५ चन्द्रमुखी, ६ हर-प्रिया, ७ उमा, ८ भीमा और ९ शान्ता कही गई हैं। इनके पूजन के मन्त्र इस प्रकार हैं–

१ ॐ ॐ ॐ सरस्वत्यै देवतायै नमः, २ ॐ ॐ ॐ रमायै देवतायै नमः, ३ ॐ ॐ ॐ गौर्यै देवतायै नमः, ४ ॐ ॐ ॐ दुर्गायै देवतायै नमः, ५ ॐ ॐ ॐ चन्द्रमुख्यै देवतायै नमः, ६ ॐ ॐ ॐ हर-प्रियायै देवतायै नमः, ७ ॐ ॐ ॐ उमायै देवतायै नमः, ८ ॐ ॐ ॐ भीमायै देवतायै नमः, ९ ॐ ॐ ॐ शान्तायै देवतायै नमः।

इन मन्त्रों से इनकी अलग-अलग पूजा करे। इनके साथ ही पाँच वर्ष के बालक की 'वटुक'-रूप में और नौ वर्ष के बालक की 'गणेश'-रूप में यथा-शक्ति गन्ध-पुष्प-वस्त्रादि द्वारा पूजा करे। इन सबको देवता समझते हुए धन की कंजूसी न करते हुए अपने कार्य की सिद्धि के लिए विविध पदार्थों से इन्हें सन्तुष्ट करे।

इस प्रकार नवरात्र में एकोत्तर-वृद्धि के क्रम से जप करे और नवरात्र में की हुई पूजा देवी को समर्पित करे। ताम्बूल, दक्षिणा देकर उक्त कुमारियों को विदा करे। इस प्रकार जो प्रति वर्ष नौ कुमारियों का अर्चन करता है, वह पुण्यात्मा देवता की प्रसन्नता को प्राप्त करता है। अपनी मनोकामना को पाकर वह तुम्हारे पास निवास करता है।

नौ युवतियों की पूजा-विधि

अथवा हे पार्वति ! यदि सुन्दर युवा स्त्रियाँ सुलभ हों, तो नवरात्रों में साधक भक्ति-पूर्वक उनकी पूजा करे। पूर्ववत् उन्हें १ हृल्लेखा, २ गगना, ३ रक्ता, ४ महोच्छुष्मा, ५ करालिका, ६ इच्छा, ७ ज्ञाना, ८ क्रिया और ९ दुर्गा—इन नामों से और वटुक तथा गणेश-रूप में बालकों का पूजन कर मद्यादि पदार्थों से सन्तुष्ट करे। 'प्रौढान्त' उल्लास से युक्त होकर यदि वे सन्तुष्ट होते हैं, तो साधक तुष्ट होकर तुम्हारे समीप निवास करता है। इस प्रकार हे देवि ! जो प्रति वर्ष, या छः मास में, या तीन मास में, या प्रति मास तीन, पाँच या सात कन्याओं या युवतियों को देवता समझकर पूजा करता है, वह सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर हम दोनों को प्रिय होता है।

शुक्रवार में शक्ति-पूजा की विधि

शुक्रवार में हे कुलेशानि ! सर्व-लक्षणा, मन्द-हासा, पुष्पिणी, युवा स्त्री को सादर निमन्त्रित कर स्नान द्वारा शुद्ध-देहा कराकर आसन पर बैठाये। गन्ध, पुष्प, वस्त्रादि से उसे सजाए। अपने को भी हे कुलेश्वरि ! गन्ध-पुष्पादि से अलंकृत करे। फिर उसमें देवता का आवाहन कर न्यास-क्रम से क्रमार्चन कर धूप, कुल-दीपकों को दिखाकर उसे देवता समझते हुये छः रसों से युक्त मांसादि भक्ष्य-भोज्यादि पदार्थों से भक्ति-पूर्वक सन्तुष्ट करे। फिर 'प्रौढान्त' उल्लास से-युक्त उसे देखता हुआ मन्त्र का जप करे। स्वयं यौवनोल्लास से युक्त रहे और उसका ध्यान करता रहे। इस प्रकार निर्विकार रूप से १००८ जप कर जपादि का समर्पण करे और उसके साथ रात्रि व्यतीत करे। तीन, पाँच, सात, नौ शुक्रवारों में जो इस विधि से पूजा करता है, उसके पुण्य की गणना नहीं की जा सकती। चारों पीठों के अर्चन का फल वह पाता है और जो-जो उसकी मनोकामना होती है, वह सब निस्सन्देह पूरी होती है। अथवा नवमी के दिन इसी विधान से पूजा कर स्तोत्रों से पूजन करे, तो सभी महान् ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है।

नौ मिथुनों का अर्चन

अथवा कर्क, मकर, तुला, सिंह, मेष या सभी संक्रान्तियों में मिथुनार्चन करे। १ गौरी-शिव २ रमा-विष्णु, ३ वाणी-ब्रह्मा, ४ शची-इन्द्र, ५ रोहिणी-चन्द्र, ६ स्वाहा-अग्नि, ७ प्रभा-रवि, ८ काली-वीरभद्र और ९ भैरवी-भैरव——इन नौ मिथुनों (युगलों) का पूजन पूर्वोक्त विधि से करे। प्रत्येक नाम के आदि में तीन 'तार' (ॐ) और अन्त में 'नमः' लगाकर अर्थात् 'ॐ ॐ ॐ गौरी-शिवाभ्यां नमः' इत्यादि मन्त्रों से गन्ध-पुष्पादि से पूजा कर मद्यादि से सन्तुष्ट करे। फिर उन्हें 'प्रौढान्त' उल्लास से युक्त मिथुन-रूप में ध्यान करे। ऐसा करने से मिथुन देवता सन्तुष्ट होकर साधक पर अनुग्रह करते हैं और उसकी मनोकामना पूरी करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। प्रति-वर्ष भक्ति-पूर्वक जो मिथुनार्चन करता है, वह सब ऐश्वर्यों से युक्त होकर तुम्हारे लोक में निवास करता है।

वैशाख में इष्ट-देवता का अर्चन

हे ईश्वरि ! वैशाख मास की शुक्ल प्रतिपदा के दिन ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर स्नान-सन्ध्या से निवृत्त हो मनोरम एकान्त स्थान में पूर्व की ओर मुख करके बैठे। फिर विधि-पूर्वक अपने आपको गन्ध-

पुष्पादि से अलंकृत कर पूर्वोक्त न्यासों को कर देव-भाव को प्राप्त करे। सूर्य-मण्डल के कुछ उदित होने पर इष्ट-देवता का आवरणों के सहित ध्यान कर षोडशोपचारों से चक्र-पूजा-युक्त पूजन करे। उसके बाद कुल-दीपों से नीराजन कर गुरु-रूप शिव को मत्स्य-मांसादि भक्ष्य-भोज्यादि सहित अर्घ्य निवेदित करे और उनके प्रसाद को शक्ति के साथ यौवनोल्लास से युक्त होकर निर्विकार चित्त से पान करे। देवी के उक्त मण्डल का ध्यान करते हुए १०८ बार जप करे। फिर जप-फल समर्पित कर पूजा और देवता का विसर्जन करे। इस प्रकार शुक्ल प्रतिपदा के शुभ दिन से प्रारम्भ कर कृष्ण चतुर्दशी के दिन तक जप-पूजा करे और अमावास्या के दिन कृपणता छोड़कर यथा-शक्ति तीन, पाँच, सात या नौ शक्तियों तथा कौलिकों का पूजन करे। एक मास तक जो यह सूर्योदय का अर्चन करता है, उससे देवता सन्तुष्ट होकर उसे अभीष्ट फल प्रदान करती है। इसी क्रम से मध्याह्न या सायाह्न में भी पूजा की जा सकती है। उसका भी वही माहात्म्य है। जो साधक तीनों सन्ध्याओं में एक मास तक इस प्रकार पूजा करता है, वह अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर पृथ्वी पर देव-वत् विहार करता है।

माघ में इष्ट-देवता का अर्चन

माघ शुक्ल की प्रतिपदा के दिन निराहार रह कर स्नान-पूर्वक श्वेत वस्त्र पहन सायं-सन्ध्या करे। फिर पूर्वोक्त विधि से सभी द्रव्यों से युक्त होकर चिद्-रूप देवता का ध्यान करते हुये चन्द्रमा के अस्त होने के समय तक एकाग्र-चित्त से मन्त्र-जप करे। पूर्णिमा के दिन यथा-शक्ति शक्तियों और कौलिकों की पूजा करे। भक्ति-पूर्वक शुक्ल-पक्ष का यह पूजन जो करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर सभी ऐश्वर्यों से युक्त होकर सब लोगों से पूजित होता है और शिव का सान्निध्य प्राप्त करता है। शुक्ल-पक्ष के समान ही कृष्ण-पक्ष का पूजन भी वैसा ही फल-प्रद है। जो विधि-पूर्वक करता है, वह सभी कामनाओं को पाता है और इस संसार में सभी सुखों का उपभोग कर देवता के समान दर्शनीय होता है तथा योगिनी-वीर के सम्मिलन का आनन्द प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं।

कार्तिक में इष्ट-देवता का अर्चन

कार्तिक मास की शुक्ल प्रतिपदा को स्नान-उपासना के द्वारा विशुद्धात्मा हो पूर्वोक्त न्यासों को करे। फिर जीव-लोक के सो जाने पर आनन्द-पूर्वक महा-निशा में पूर्वोक्त विधि से सभी द्रव्यों से युक्त होकर पांच रङ्गों के चूर्ण से चित्रित अष्ट-दल-कमल बनाये। उस पर कांसे का सुन्दर कलश मधु से भर कर स्थापित करे। कलश पर घृत का दीपक अपने सामने जलाकर स्थापित करे। दीपक की बत्ती अनामिका के समान मोटी हो। उत्तर की ओर मुख कर साधक कलश के सामने बैठे और उक्त दीपक की ज्योति में आवरण-सहित देवी का ध्यान कर विधिवत् उसकी पूजा करे। फिर यौवनोल्लास से युक्त होकर दीपस्थ देवता का स्मरण करते हुए एकाग्र मन से १००८ बार जप करे। इस प्रकार कृष्ण चतुर्दशी के दिन तक पूजा करे। अमावास्या के दिन भक्ति-पूर्वक कुल-शक्तियों का पूजन करे। ऐसा करने से साधक देवता का प्रीति-पात्र होता है और सब प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त होकर सबसे सम्मानित होता है।

अष्टाष्टक की पूजा

यदि समर्थ हो, आठ अष्टकों की पूजा एक दिन में करे। अथवा ८, १६, ३२ या ६४ दिनों में पूजा-क्रम के ज्ञाता गुरु द्वारा पूजन कराए। यदि क्रम का ज्ञाता हो, तो स्वयं ही कृपणता को छोड़कर पूजा करे। ब्रह्मा आदि और असिताङ्ग आदि भैरव आठ मंगलादि मिथुनों सहित मूल अष्टक हैं। मूल अष्टकों से उद्भूत अक्षोभ्य आदि ६४ मिथुन कुलागम में प्रसिद्ध हैं। पूर्वोक्त विधान से यथा-शक्ति

उनकी पूजा करे। अपने अभीष्ट कार्य को सिद्ध करने के लिये क्रम का लोप न करे। गन्ध-पुष्पाक्षत, मत्स्य-मांस-मद्य, भक्ष्य-भोज्य आदि छः रसों से युक्त पदार्थों आदि से मिथुनों को अति भक्ति के साथ अच्छी तरह सन्तुष्ट करे। प्रौढान्त उल्लास तक श्री चक्रार्चन करे। इस प्रकार जो एक बार अष्टाष्टक की पूजा करता है, वह ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि देवताओं द्वारा पूजित होता है। फिर मनुष्यों की क्या बात। वह साक्षात् शिव ही होता है। इस पूजन से वह ६४ योगिनियों द्वारा संस्तुत होकर पुनर्जन्म से छूटकर तुम्हारे पास रहता है। हे परमेश्वरि! इससे सभी देवता प्रसन्न होते हैं। अतः इससे श्रेष्ठ अन्य पूजा नहीं है, यह निस्सन्देह सत्य है। हे प्रिये! इस प्रकार के अष्टाष्टक-चक्र का जो भक्ति-पूर्वक दर्शन करता है, वह करोड़ों यज्ञ-दान-तप-तीर्थ-व्रत का फल पाता है। जो राजा भक्ति-पूर्वक अष्टाष्टक-पूजन कराता है, वह चार सागरों तक व्याप्त पृथ्वी पर शासन करता है, इसमें सन्देह नहीं।

श्रीकण्ठादि ५० मिथुनों की पूजा

अपने अभीष्ट फल को पाने के लिये श्रीकण्ठादि ५० मिथुनों की पूर्वोक्त विधि से प्रौढान्त उल्लास से युक्त रूप में पूजा करे। सन्तुष्ट होकर वे साधक को इच्छित फल देते हैं और सर्वत्र देव-वत् उसकी पूजा होती है। ब्रह्मादि देवताओं से संस्तुत होकर हे देवि! वह तुम्हारे लोक में निवास करता है।

केशवादि मिथुनों की पूजा

श्रीकण्ठादि-मिथुनों के समान केशवादि, गणेशादि और कामादि मिथुनों की पूजा करने से वैसा ही फल निश्चित रूप से मिलता है।

डाकिन्यादि की पूजा

प्रति मास, प्रति वर्ष या अपने जन्म-दिवस पर जो डाकिन्यादि की पूजा पूर्वोक्त विधि से यथा-शक्ति करता है और प्रौढान्त उल्लास तक उन्हें सन्तुष्ट करता है, उससे हे देवि! सभी देवता प्रसन्न होते हैं और वह सभी उपद्रवों से रहित होकर सभी ऐश्वर्यों से युक्त होता है। इस लोक में सभी से वन्दित होकर वह सौ वर्षों तक जीवित रहता है और मृत्यु होने पर तुम्हारे लोक को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं।

दूती-याग का फल

पूर्वोक्त विधि से नव शक्तियों से युक्त हो निर्विकल्प चित्त से जो 'दूती-याग' करता है, वह प्रति वर्ष ६४ पीठों के अर्चन का फल पाता है। उसे आज्ञा-सिद्धि मिलती है और देवता उस पर प्रसन्न होती है।

त्रिक-पूजा का फल

इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मिका 'त्रिक-पूजा' को जो आगमोक्त विधि से करता है और पूर्ववत् यथा-शक्ति पदार्थों से देवताओं को सन्तुष्ट करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूरी होती हैं, इसमें सन्देह नहीं।

कुल-पूजा के बिना चक्र में अधिकार नहीं

उक्त देवताओं की पूजा विशेष दिनों में जो शास्त्र-विधि से करता है, वह हम दोनों का प्रिय होता है। जो कौलिक समर्थ होकर भी मोह-वश विशेष दिनों में श्रीचक्र-पूजन को नहीं करता, वह योगिनियों का पशु बनता है। कुल-पूजा के बिना चक्र में किसी को अधिकार नहीं होता। जो नियमित रूप से कुल-पूजा करता है, वही कौलिक है। यन्त्र के बिना पूजा करने से देवता प्रसन्न नहीं होती। जो कुल-पूजा करता है, वह योगिनी-वीर के सम्मिलन का आनन्द लाभ करता है।

कुल-पूजा की प्रशंसा

नीच भी यदि एक बार भक्ति से कुलार्चन करता है, तो वह सद्गति को प्राप्त करता है। फिर द्विजाति के लोगों का क्या कहना। अतः प्रयत्न-पूर्वक सब दशाओं में सदा कुल-पूजा करनी चाहिये क्योंकि इससे अभीष्ट फल मिलता है। कुल-पूजा से अधिक न कोई यज्ञ है, न कोई व्रत, तीर्थ, तप, दान, क्रिया, ज्ञान, सुख, धर्म, फल, ध्यान, तेज, योग, गति, भाग्य, अर्चना है। अधिक कहने से क्या, हे पार्वति ! रहस्य की बात सुनो। वेद-शास्त्रोक्त मार्ग से जो कुल-पूजा करता है, उसी के समीप तुम मुझे स्थित समझो। अन्य कहीं मैं नहीं रहता। यह सर्वथा सत्य है, इसमें सन्देह नहीं। आकाश, भूमि, दिशाओं, जल, पर्वत, वन आदि सभी स्थानों में विचरण करनेवालों, सहस्र कोटि योगिनियों और उतने ही भैरवों की नियुक्ति मैंने कुल के संरक्षण के लिये की है। ये सब प्रतिदिन प्रसन्न-मुख हो अपने-अपने पूजन की लिप्सा से साधकों को ही देखा करते हैं। पूजित न होने पर भक्ति-हीन, दुराचारी, धर्म को प्रकट करने-वाले लोगों का ये नाश करते हैं और पूजित होने पर गुरु-भक्त, सदाचारी, धर्म को गुप्त रखनेवालों का पालन करते हैं। अतः जो श्रीचक्र में योगिनियों और भैरवों का स्मरण नहीं करता है, वह योगिनियों का पशु बनता है। अतः सभी देवताओं का स्मरण करे। वे साधकों पर अनुग्रह करती हैं, इसमें सन्देह नहीं।

अनुग्रह में छः प्रकार की व्यवस्था

हे देवि ! 'अनुग्रह' को यथा-क्रम बताऊँगा, सुनो। अपने ऊपर अनुग्रह के लिये या दूसरे पर श्रेष्ठ अनुग्रह के लिये पवित्र द्रव्यों से युक्त चक्र-पूजा के सहित सभी को दक्षिणा देकर अलग-अलग होम-पात्र प्रदान करे और सर्वाभूषणों से सजी हुई वर्ण-स्थित शक्तियों की पूजा करे। स्वयं हर्षानन्द से युक्त रहे और अलग-अलग सब प्रसन्न रहें। भक्ति-पूर्वक गन्ध-पुष्पादि से गणेश्वर का पूजन कर खीर, घी, चावल से युक्त नैवेद्य प्रदान करे। पूजन का मन्त्र यह है--

हसखफ्रें ह्सौं डां डीं डमलवरयूं श्रीपादुकां ह्सौं हसखफ्रें।

मन में अभीष्ट सङ्कल्प कर गन्ध-पुष्पादि और मधुर-त्रय से अलग-अलग अर्चन कर इच्छित कामनाओं की पूर्ति के लिये प्रार्थना करे। साधक की सभी इच्छाएँ पूरी होती हैं। १ अपनी और दूसरे की रक्षा के लिये, २ रोगों के नाश के लिये, ३ पुत्र-प्राप्ति के लिये, ४ वश्य के लिये, ५ मङ्गल (कल्याण) के लिये, ६ धर्म-काम-अर्थ की सिद्धि के लिए एक सप्ताह या चौदह दिनों तक पूजन करे। अथवा इक्कीस दिनों में अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। चौंसठ के सहित और कुलाष्टक से युक्त मण्डल को अलग-अलग वस्त्र-भूषाभूषणादि दक्षिणा देकर प्रयत्न-पूर्वक पूजन करने से अनेक प्रकार की सिद्धि होती है। अपनी सिद्धि की इच्छा हो, तो धन की कृपणता न करे।

इस प्रकार अनुग्रह-षट्क कहा गया है। साधकों को अपनी इष्ट-सिद्धि के लिये प्रयत्न-पूर्वक अर्चन करना चाहिये। ध्यान कर इन डाकिनी आदि की पूजा करे। पूजन कर चुकने पर सर्व-सिद्धि के लिये सप्तमी देवी की पूजा करे। यथा—

शक्ति-देह-समुत्पन्नं शक्ति-निर्माल्य-भोजने स्व-वर्गेण समायुक्ता दत्त-निर्माल्यं प्रति-गृह्ण प्रति-गृह्ण स्वाहा।

इस मन्त्र से निर्माल्य प्रदान करे।

डाकिनी आदि के ध्यान

'डाकिनी' सर्प-वदना वित्तजा ज्वलन-प्रभा ।
कमण्डलुं कर्तृकां च धारयन्ती वर-प्रदा ॥ १ ॥
उलूक-वदना देवी 'राकिणी' नील-सन्निभा ।
खड्ग-खेटक-संयुक्ता सर्वालङ्कार-भूषिता ॥ २ ॥
'लाकिनी' श्रीकपालाढ्या पाशांकुश-धरा सती ।
पाटली-पुष्प-सङ्काशा सर्वाभरण-भूषिता ॥ ३ ॥
'काकिनी' हय-वक्त्रा च माणिक्य-सदृश-प्रभा ।
त्रि-मुखी मुण्ड-संयुक्ता सिद्धिदा सर्व-शोभना ॥ ४ ॥
'शाकिनी' त्वञ्जन-प्रख्या मार्जारास्या सुशोभना ।
कुलिशं च दण्डं धारयन्ती शुचि-स्मिता ॥ ५ ॥
'हाकिनी' ऋक्ष-वदना नील-नीरद-सन्निभा ।
कपाल-शूल-हस्ता च खेटकैरप-शोभिता ॥ ६ ॥
एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-षण्मुखी सरभाभया ।

इस प्रकार हे कुलेशानि ! विशेष दिवसों का कुछ अर्चन-विधान मैंने संक्षेप में कहा । अब तुम क्या सुनना चाहती हो ?

ग्यारहवाँ उल्लास : कुलाचार-कथन

देवी ने कहा—हे कुलेश ! मैं कुलाचार-क्रम को सुनना चाहती हूँ । उसे मुझे बताइये ।

क्रम का ज्ञाता कनिष्ठ होने पर भी अधिकारी

हे देवि ! सुनो, जो तुमने मुझसे पूछा है, उसे मैं बताऊँगा, जिसके सुनने मात्र से सब पापों से छुटकारा मिल जाता है । यदि दीक्षा-प्राप्त ज्येष्ठ व्यक्ति कुल-पूजा से वर्जित हो, तो कनिष्ठ होते हुये भी यदि क्रम का ज्ञाता हो, तो वही कुल-पूजा करे । उसके पास जाकर उसे गुरु-वत् नमस्कार करे । उसे सब कुछ निवेदित कर शेष को खाये । पूजा के मध्य में गुरु, ज्येष्ठ या पूज्य के आने पर बैठे-ही-बैठे उन्हें नमस्कार शिष्टाचार करे और उनकी अनुमति लेकर कार्य करे । एकत्र स्थित होने पर ज्येष्ठ और कनिष्ठ शिष्य का आचार इसी प्रकार कहा गया है ।

अज्ञात कौलिक के आने पर

अज्ञात कौलिक के आने पर परम्परा का निर्वाह करे । अपने गुरुदेव का स्मरण कर अपने अपने मार्ग से तर्पण करे ।

अर्चन का समय

नित्यार्चन दिन में करे और नैमित्तिक अर्चन रात्रि में। दोनों ही काम्य कर्म हैं, यह शास्त्र-निर्णय है।

पूजा में कर्तव्य

स्नान किये बिना, या आसन पर बैठे बिना, या भोजन करके, या प्रलाप करते हुये, या गन्ध-पुष्प, वस्त्रादि से अलंकृत हुये बिना, या शरीर में न्यास किये बिना कुल-पूजा न करनी चाहिये। मन्त्र के बिना पूजा, मांस के बिना तर्पण और शक्ति के बिना जो पान किया जाता है, वह निष्फल होता है। श्री चक्र-पूजा को अकेले न करे और न एक पात्र में पूजन करे। न एक हाथ से पूजा करे और न एक हाथ से पान करे। पशु के निकट मत्स्य-मांस और आसव के द्वारा पूजन न करे। प्रणाम कर चक्र में प्रवेश करे और प्रणाम करके ही उससे बाहर जाय। श्रीचक्र में न तो आसन पर खड़ा रहे और न वीरासन से बैठे। हे देवि! श्रीचक्र का दर्शन करने से नेत्रों के पाप नष्ट होते हैं। दर्शन न होने से कौलिक के दोनों नेत्र नेत्र न रहकर दो घाव से प्रतीत होते हैं। चक्र में बैठी हुई शक्ति और कौलिकों के अनाचार सदाचार होते हैं। पार्वती-शिव-रूप में उन्हें मानना चाहिये। उनका अपमान न करे।

कुलाचार्य के घर में अमृत की याचना

कुलाचार्य के घर में पहुँचे, तो पापों से मुक्त होने के लिये माँगकर भक्ति-पूर्वक अमृत या उसके अभाव में जल पिये। कुलाचार्य के द्वारा दिये गये पात्र को नमस्कार कर भक्ति के साथ ग्रहण करे, अन्यथा नरक जाना पड़ता है।

कुल-द्रव्य के पान में नियम

स्नान किए बिना, या बिना भक्ति, या लोभ-वश जो कुल-द्रव्य का सेवन करता है, वह दरिद्रता को प्राप्त करता है। शस्त्र-धारी, नग्न, खुले बालवाला, व्याकुल, क्रुद्ध और झगड़ालू व्यक्ति कुलामृत का सेवन न करे। जो मद्य-पात्र अनेक हाथों में घूमता है, जो मद्य उच्छिष्ट है और जिस मद्य को नली द्वारा पिया जाता है, उसका पान करने से देवता का शाप मिलता है। एक आसन पर बैठनेवाले, एक पात्र में भोजन करनेवाले और एक पात्र में द्रव्य-पान करनेवाले नरक में जाते हैं। यदि गुरुदेव, या उनका पुत्र, या उनके वंशज उसी ग्राम या नगर में निवास करते हैं, जहाँ कि साधक रहता है, तो उनकी अनुमति के बिना जो कुल-द्रव्य का सेवन करता है, वह अक्षय नरक में जाता है।

चक्र में निषिद्ध कार्य

हे पार्वति! चक्र में जूठे हाथों से कुल-द्रव्यों को न छुये। बाहर दोनों हाथ धोकर कुल-द्रव्यों को प्रदान करे। मद्य-पात्र को उठाकर पात्र को न भरे। भोग-पात्र को कभी सुरा-कुण्ड में न डाले। चक्र के मध्य में शुद्ध होने के विचार से जो हाथ आदि धोता है, वह मूर्ख आपत्ति में पड़ता है। श्री चक्र के मध्य में जो मल-मूत्र-अधोवायु का विसर्जन करता है, वह योगिनियों का पशु बनता है। चक्र के बीच में घट के टूटने, या पात्र के पृथ्वी पर गिरने, या दीपक के बुझने से जो दोष होता है, उसकी शान्ति के लिए पुनः श्री चक्र-पूजा करानी चाहिए। हे प्रिये! ज्ञानी लोग चक्र में जप करते हैं, ध्यान करते हैं, स्तवन करते हैं, प्रणाम करते हैं, उद्बोधन करते हैं, जिज्ञासा करते हैं और आनन्दित होते हैं। अज्ञानी लोग चक्कर खाते हैं, चिल्लाते हैं, हँसते हैं, झगड़ा करते हैं, रोते हैं, स्त्रियों की इच्छा करते हैं और निन्दा करते हैं। चक्र के मध्य में परिहास, प्रलाप, बहुत बातचीत, उदासी, भय और क्रोध न करे। हे महा-देवि! हाथ में पात्र हो, तो बातचीत न करे। पात्र को तोड़े नहीं, पात्र को पैरों से न छुए और नीचे विन्दु न गिराये।

एक हाथ से और बिना मुद्रा के पात्र न दे। पात्र को अपने स्थान से न हटाए और उसे अन्य पात्रों में न मिलावे। शब्द करते हुये द्रव्य का पान न करे और न ही पात्र को भरते समय शब्द करे। एक दूसरे के पात्रों को टकराये नहीं और न पात्र को नीचे गिराये। आधार के सहित पात्र को न उठाये और उसे आधार से अलग न रखे। पात्र को खाली न करे और उसे घुमाये नहीं। पात्र को लाँघे नहीं और उसे ऊपर न उठाये। पात्र को धोकर छिपा दे, यह आज्ञा है।

पशु-सम्पर्क से हानि

उल्लास-युक्त होकर कोई कौलिक यदि पशु का साथ करता है, या पशु-शास्त्रों को पढ़ता है, या पशु-स्त्रियों का सङ्ग करता है, या पशु-प्रसङ्ग करता है, या पशु-धर्म करता है, तो उसके धर्म-अर्थ-आयु-यश-पुण्य-ज्ञान-सुख आदि नष्ट हो जाते हैं। श्रीचक्र-स्थित कुल-द्रव्य को जो अपनी इच्छा से, या लोभ से या भय से पशुओं को देता है, वह योगिनियों के द्वारा मारा जाता है।

साधक के कर्तव्य

चक के बीच में शत्रु के भी साथ वाद-विवाद न करे ! माता-पिता के समान उसे देखे, उसके कठोर वचनों को भी सह ले। अपने कुटुम्बी या प्यारे मित्र को देखकर जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी ही प्रसन्नता कौलिकों को देखकर जिसे होती है, वह योगिनियों का प्रिय होता है। 'ब्रह्मा से स्तम्ब पर्यन्त सभी मेरे लिए गुरु-सन्तति के समान हैं, मैं सभी का शिष्य हूँ, पृथ्वी-तल पर कौन मेरा पूज्य नहीं है ?'—इस प्रकार जिसकी निश्चित बुद्धि है, वह हम दोनों का प्रिय होता है। 'मैं गुरु हूँ, मैं ज्येष्ठ हूँ, मैं ज्ञानी हूँ'—इस प्रकार गर्व करनेवाले कौलिक नहीं होते। श्री गुरुदेव, कुल-शास्त्रों और पूजा-स्थानों को भक्ति-पूर्वक 'श्री' से उनके नामों को युक्त कर प्रणाम करे और तब उनकी महिमा का वर्णन करे। जप-काल को छोड़कर गुरुदेव के नाम का उच्चारण न करे। 'श्रीनाथ, देव, स्वामी'—इन शब्दों से उनका उल्लेख करे। श्रीगुरु-पादुका, मूल-मन्त्र और अपनी पादुका शिष्य को छोड़कर अन्य किसी को न बताए। परम्परा, आगम, आम्नाय, मन्त्राचार आदि सभी गुरु-मुख से प्राप्त होने पर ही सफल होते हैं, अन्यथा नहीं। आश्रय-भूत शास्त्र की पुस्तक को न बताये, नित्य भक्ति से उसकी पूजा करे और पशु के हाथ में उसे कभी न दे। हे पार्वति ! अपनी पत्नी के समान कुल-शास्त्रों का सेवन करे और पशु-शास्त्रों से पराई स्त्री के समान दूर रहे। जिस प्रकार चमड़े में स्थित दूध उत्तम द्विजों के लिये अपेय है, उसी प्रकार कौलिकों को पशु-मुख से धर्मोपदेश नहीं सुनना चाहिये। जो कुलाचार को सुनते हैं और जो शास्त्रानुसार कहते हैं, वे दोनों ही साक्षात् योगिनी-वीर के सम्मिलन को प्राप्त करते हैं। हे कुलेश्वरि ! जो इस कुल-धर्म में श्रद्धा नहीं रखते, वे प्रलय पर्यन्त नरक से छटकारा नहीं पाते।

पाँच प्रकार की गुरु-स्त्रियाँ

१ विवाहिता, २ रखी हुई, ३ मूल्य से खरीदी, ४ प्रेम-बद्धा, ५ काम-रता—ये पांच प्रकार की गुरु-स्त्रियाँ हैं। गुरु के समान ही ये अलंध्या और पूज्या हैं।

वर्जित स्त्रियाँ

गुरु-शक्ति, वीर-पत्नी, कुमारी, व्रत-धारिणी, व्यङ्गाङ्गी, विकृताङ्गी और कुब्जिका स्त्री की भी कामना न करे। पुत्री, बहन, पौत्री, पुत्र-वधू और अपनी प्रिया स्त्री को गुरु के सामने न करे।

पूजनीया स्त्रियाँ

कृष्णांशुका, कृष्ण-वर्णा, मनोहरा, युवती कुमारी की देवता-रूप में पूजा करे। बल-पूर्वक कभी कुल-योगिनी का सेवन न करे। चक्र में स्वयं-क्षुब्धा की ही कामना करे।

दर्शन होने पर वन्दनीय

कच्चा मांस, सुरा, कुम्भ, मत्त हाथी, सिद्धि चिह्न वाला, अशोक वृक्ष, क्रीडा-रत कुमारियाँ, श्मशान, स्त्रियों का समूह, रक्त-वस्त्रा नारी यदि दिखाई पड़ें, तो भक्ति-पूर्वक उनकी वन्दना करे।

निषिद्ध कार्य

गुरु की शक्ति, गुरु-पुत्र, ज्येष्ठ या कनिष्ठ कौल साधक, कुल-दर्शन के शास्त्र, कुल-द्रव्य, कौलों के प्रेरक, सूचक, वाचक, दर्शक, शिक्षक, बोधक, योगी, योगिनी, सिद्ध पुरुष, कन्या, कुमारी, नग्न या पागल स्त्री—इनमें से किसी की न कभी निन्दा करे, न हँसी उड़ाए, न अपमान करे, न अप्रिय और असत्य बात कहे। कुल-स्त्री को कभी 'काली' या 'कुरूपा' न कहे। भक्त वीरों के किये और न किये की कभी जाँच-पड़ताल न करे। नग्न, पागल, प्रकट-स्तनी स्त्री को न देखे। दिन में स्त्री-सङ्ग न करे, उसकी योनि को कभी न देखे।

सभी स्त्रियाँ माता के समान

संसार में जो भी स्त्री है, वह माता के समान है। स्त्रियों का व्यतिक्रम करने से कुल-योगिनियाँ रुष्ट होती हैं। सौ अपराध करने पर भी स्त्रियों को पुष्प तक से न मारे। स्त्रियों के दोषों का कभी वर्णन न करे, अपितु उनके गुणों को ही प्रकाशित करे।

कुल-वृक्षों के सम्बन्ध में

कुल-योगिनियाँ सदा कुल-वृक्षों में रहती हैं। अतः उनके पत्तों में, विशेष कर अर्क-पत्र में भोजन न करे। कुल-वृक्ष के नीचे न तो सोये और न कोई उपद्रव करे। उसे देख या सुनकर नमस्कार करे। कभी उसे काटे नहीं। १ श्लेष्मान्तक, २ करञ्ज, ३ निम्ब, ४ अश्वत्थ, ५ कदम्ब, ६ बिल्व, ७ वट, ८ उडुम्बर और ९ तिन्तिडी—ये नौ कुल-वृक्ष हैं।

कौलिकों के लिये वर्जित पञ्च-कार्य एवं पञ्च-पातक

१ प्रायश्चित्त, २ भृगु-पात, संन्यास, ४ व्रत-धारण, ५ तीर्थ-यात्रा—ये पाँच कौल न करे। १ वीर-हत्या, २ वृथा पान, ३ वीर-पत्नी-सेवन, ४ वीर-द्रव्य का हरण और ५ वीर-द्रव्य का संयोग—कौलिकों के लिये ये पाँच पाप हैं।

कौल की विशेषता—१ निग्रह, २ अनुग्रह

शैव में तत्व का परिज्ञान, गारुड-विद्या में विष-भक्षण, ज्योतिष में ग्रहण और कौल में अनुग्रह एवं निग्रह सार-स्वरूप हैं।

पाप-जनक कार्य

देवता, गुरु और शास्त्रों के सिद्धाचार की विडम्बना तथा विद्या की चोरी करनेवाला, गुरु-द्रोही ब्रह्म-राक्षस होता है। गुरु-वाक्य को तोड़कर, वीरों का अपमान कर, गुरु को डाट-फटकार कर, वीर को झगड़े द्वारा हराकर और कुल-शास्त्रों की उपेक्षा कर ब्रह्म-राक्षस होता है। एकाक्षर के देनेवाले गुरुदेव की जो अवज्ञा करता है, वह सौ योनियों में घूमता फिरता हुआ चाण्डाल होता है।

कुल-निन्दक के वध में दोष नहीं

माता, पिता, पत्नी, भाई, बन्धु, पुत्र और कुल की निन्दा करनेवाले को बिना बिचार किए ही मारे। गुरु, देवता, कौलिक, कुलागम, कुल-धर्म की रक्षा के लिए जो निन्दक को मारकर अपने प्राणों को छोड़ता है, वह परम शिव में लीन होता है। जहाँ एक दुराचारी के निधन से बहुतों का कल्याण होता हो, वहाँ उसका बध करने से पुण्य ही होता है।

श्रीचक्र का वृत्तान्तादि गोपनीय

श्री चक्र के शुभ या अशुभ वृत्तान्त को कभी नहीं कहना चाहिए, यह आज्ञा है। कुल-धर्म के प्रसङ्ग को पशुओं के सामने कभी न छेड़े, जिस प्रकार शूद्र के आगे वेद का पाठ करना मना है। पीठ-क्षेत्र, आगम, आम्नाय, उसकी विद्याओं, आचार, कौलिकों और कुल-द्रव्यादि का वर्णन पशु के समीप न करे। जिस प्रकार चोरों से धन-धान्यादि की रक्षा की जाती है, उसी प्रकार पशुओं से कुल-धर्म की रक्षा करे। अन्दर से कौल, बाहर से शैव और लोगों के बीच वैष्णव–इस प्रकार हे देवि ! नारियल के जल की भांति कौल को गुप्त रखे। कुल-धर्म आदि सबको सभी दशाओं में सदा गुप्त रखे। वेद-शास्त्र-पुराण तो गणिका के समान स्पष्ट हैं किन्तु यह शाम्भवी विद्या कुल-वधू के समान गुप्त है। सुगुप्त कौलिकाचार पर देवता अनुग्रह करती हैं, वांच्छा-सिद्धि देती हैं किन्तु उसे प्रकट करनेवालों का नाश करती हैं। हे कुलेशि ! कुल-शास्त्र के जो ज्ञाता कुल-पूजा में परायण होकर एकान्त में तुम्हारी सेवा करते हैं, वे तुम्हारे समीप रहते हैं। बुद्धिमान गुरु को प्रकट करे, मन्त्र को यत्न-पूर्वक गुप्त रखे। अप्रकाश्य को प्रकाशित करने से सम्पत्ति और आयु का नाश होता है। सभी आचारों से भ्रष्ट कुलाचार का आश्रय ले। कुलाचार से भ्रष्ट रौरव नरक में जाता है। महा-पापियों के उद्धार का उपाय शास्त्रों में मिलता है किन्तु कुल से भ्रष्ट होनेवाले के उद्धार का उपाय कहीं नहीं दिखाई देता। कुल-धर्म का आश्रय लेकर जो कुलाचार का पालन नहीं करता, उस स्वेच्छाचारी महा-पापी को आपत्ति, पाप, रोग, दरिद्रता, कलह, भय, योगिनियों का कोप, पग-पग पर चोट मिलकर वह नाशमान, सर्व-निन्दित, व्याकुल और सबसे त्यक्त होकर एक देश से दूसरे देश को जाता है। उसके कार्य की सदा हानि होती है क्योंकि वहाँ भी कुल-मार्गस्था शाकिनियाँ कुल-पालिका हैं, जो उन्हें खा जाती हैं। मैंने ही उन्हें वर दे रखा है। अतः हे देवि ! आचारवान् ही योगिनियों का प्रिय होता है। चतुर्वेदों के आचारों का जो पालन नहीं करते, उनका वे नाश करती हैं।

कौलिक का पतन करनेवाले दुष्कर्म

पादुका मात्र को सार समझनेवाला सदाचारों से नियन्त्रित रहता है। सदाचार से ही देवत्व और योगिनी-वीर का सम्मिलन मिलता है। उसका उलटा करने से कौलिकों को तिर्यंक योनि मिलती है। यह आज्ञा द्वारा प्रमाणित है कि अनाचार से कौल नष्ट होता है और आचार पालन करने से आज्ञा-सिद्धि मिलेगी, यह सत्य है।

सदाचार की प्रधानता

न अभिषेक, न मन्त्र और न शास्त्र का पढ़ना आदि, सदाचार ही कुल-धर्म का कारण है। परा पादुका, तत्व-त्रय और आचारादि की भावना को जो जानता है, वही 'समयी' तथा कौलिक है। जब तक 'समय' का पालन नहीं करता, तब तक साधक कौलिक नहीं होता। समयाचार का पालन करने से देहावसान होने पर मोक्ष मिलता है। संस्कार की हीनता, गुरु-वाक्य की उपेक्षा और आचार की अवमानना से कौलिक का पतन होता है। नित्य, नैमित्तिक, द्रव्य, मन्त्र-यन्त्रादि का न होना, अयोग्य पशुओं का कुसङ्ग, मन्त्र की सङ्करता, जान-अनजान में गोपनीय का प्रकट होना आदि दोषों के पापों से पतन होता है।

दोषी साधकों के लिये प्रायश्चित्त

गुरुदेव इस प्रकार के दोषी शिष्य को देश, काल, आयु, धन-सामर्थ्य का विचार कर प्रायश्चित्त बताएँ। शिष्य भी गुरु द्वारा निर्दिष्ट प्रायश्चित्त को करे। अथवा गुरुदेव के नाम का जप करने से सभी पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है। जिस प्रकार अग्नि द्वारा प्रत्यक्ष ही पाप की शुद्धि होती है,

उसी प्रकार अनाचार की मलीनता को प्रायश्चित्त की अग्नि से जला डाले। यहाँ अधिक कहने से क्या, सभी वर्णाश्रमों के लिए आचार ही सद्गति-दायक है।

गुरु द्वारा आचार का तीन बार उपदेश

हे कुलेश्वरि ! गुरुदेव को तीन बार आचार का वर्णन करना चाहिए। उस पर भी यदि शिष्य उसका पालन नहीं करता, तो गुरु को पाप नहीं होता।

शिष्य का पाप गुरु को

जिस प्रकार मन्त्री का दोष राजा को और पत्नी का दोष पति को लगता है, उसी प्रकार शिष्य का पाप गुरु को लगता है, इससे सन्देह नहीं।

इस प्रकार संक्षेप में मैंने कुलाचार की विधि कही। अब हे देवि ! तुम क्या सुनना चाहती हो ?

बारहवाँ उल्लास : श्रीपादुका-कथन

श्री देवी ने कहा—हे कुलेश ! मैं पादुका की भक्ति के लक्षण और उससे सम्बन्धित आचार के विषय में सुनना चाहती हूँ, उसे बताइये।

श्रीपादुका की महिमा

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो, जो तुमने पूछा है, उसे बताऊँगा, जिसके सुनने से भक्ति तुरन्त उत्पन्न होती है। पादुका में कुलार्णव का ज्ञान प्रतिष्ठित है, जिस प्रकार वाग्भव में सूत्रादि सन्निविष्ट हैं, कोटि महा-दानों, महा-व्रतों और महा-यज्ञों से श्रेष्ठ श्रीपादुका की स्मृति है। कोटि मन्त्र-जप से, कोटि तीर्थों के स्नान से और कोटि देव-पूजन से बढ़कर श्री पादुका की स्मृति है। महा-रोग, महा-उपद्रव, महा-दोष, महा-भय, महा-आपत्ति और महा-पाप में स्मरण करने से पादुका रक्षा करती है। दुराचार, दुरालाप, दुःसङ्ग, दुष्प्रतिग्रह, दुराहार और दुर्बुद्धि में फँसने पर स्मरण करने से पादुका रक्षा करती है। अतः पादुका का पाठ किया जाता है, उसे याद रखा जाता है, उसे जाना जाता है, इष्ट-रूप माना जाता है, गुरु द्वारा दी जाती है और उसकी पूजा की जाती है। जिसकी जिह्वा के अग्र भाग में श्रीपादुका की स्मृति सदा रहती है अथवा जो एक बार भी भक्ति से श्रीपादुका का जप करता है, वह सब पापों से छूटकर परम गति को पाता है। पवित्र हो या अपवित्र, जो भक्ति से पादुका-स्मरण करता है, वह सहज ही धर्मार्थ-काम-मोक्ष को प्राप्त करता है।

गुरु और ईश्वर का सारूप्य

श्रीनाथ के चरण-कमल जिस दिशा में विराजते हों, उस दिशा को प्रतिदिन भक्ति से नमस्कार करे। पादुका से श्रेष्ठ मन्त्र नहीं है, श्रीगुरु से श्रेष्ठ देव नहीं है, शाक्त से श्रेष्ठ दीक्षा नहीं है और कुल-पूजा से श्रेष्ठ पुण्य नहीं है। ध्यान का मूल श्रीगुरु का स्वरूप, पूजा का मूल गुरु-चरण, मन्त्र का मूल गुरु-वाक्य और मोक्ष का मूल गुरु-कृपा है। हे कुल-नायिके ! इस संसार में सभी क्रियाओं के मूल श्रीगुरु हैं। अतः सिद्धि के लिये भक्ति-पूर्वक नित्य गुरु की सेवा करे।

गुरु-भक्ति से हीन व्यक्ति की निन्दा

जब तक भक्त-वत्सल श्रीगुरु की शरण नहीं मिलती, तभी तक व्याकुलता, भय, शोक, लोभ, मोह, भ्रम आदि का कष्ट रहता है। जब तक प्राणियों की भक्ति सद्गुरु में नहीं होती, तभी तक वे सब प्रकार के दुःखों से पीड़ित होकर संसार में भटकते फिरते हैं। सर्व-सिद्धियों के फल से युक्त मन्त्र तब तक सिद्ध नहीं होता, जब तक गुरु में भक्ति नहीं होती।

गुरु-भक्ति और उसका फल

परम तत्व से युक्त इस महान् क्रम का मूल गुरु की प्रसन्नता है। जिस प्रकार सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर वर-दायक मन्त्र को प्रदान करें, उसी प्रकार भक्ति-पूर्वक धन और प्राणों से गुरु को यत्न करके प्रसन्न करे। जब उत्तम देशिक (आचार्य) अपने शिष्य को अपनी आत्मा प्रदान करते हैं, तब वह शिष्य मुक्त हो जाता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। शिष्य गुरु की तब तक आराधना करे, जब तक वे प्रसन्न न हो जायँ। गुरु के प्रसन्न होते ही शिष्य के सब पाप नष्ट हो जाते हैं। लोम जिन कामनाओं की मन से कांक्षा नहीं करते, वे सब भक्त-वत्सल स्वामी की कृपा से पूरी हो जाती हैं। गुरु के प्रसन्न होने पर ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि देवता, मुनि और योगी प्रसन्न होकर अनुग्रह करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। भक्ति से प्रसन्न कृपालु गुरु द्वारा जिसे उपदेश मिलता है, वह शिष्य कर्मों से मुक्त होकर भोग और मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। शिष्य वैसा ही कार्य करे, जिससे गुरु सन्तुष्ट हों। मन, वचन, शरीर और कर्मों से उनका प्रिय करे। यदि सन्तुष्ट गुरु द्वारा अपने शिष्य से कहीं यह कहा जाता है कि 'तुम मुक्त हो' तो वह मुक्ति को प्राप्त करता है। अथवा ईश्वर गुरु-रूप से निष्प्रपञ्च तेज द्वारा पशु-पाशों से छुड़ा देता है। चतुर्वेदी मुझे प्रिय नहीं है। श्वपच भी यदि मेरा भक्त है, तो मुझे प्रिय है। उसे देना चाहिये, उससे लेना चाहिये क्योंकि वह मेरे समान ही पूज्य है। विप्र चाहे छः गुणों से युक्त हो किन्तु अभक्त होने से प्रशस्त नहीं है। गुण-हीन म्लेच्छ भी भक्तमान् होने से शिष्य कहा जाता है।

गुरु-भक्ति से विहीन व्यक्ति का तप, ज्ञान, कुल और व्रत सभी नष्ट हो जाता है और उसे स्वर्ग नहीं मिलता। गुरु-भक्ति रूपी अग्नि से जिस चाण्डाल की दुर्बुद्धि आदि पाप जल चुके हैं, वह श्रेष्ठों द्वारा पूजनीय है, किन्तु नास्तिक विद्वान् नहीं। श्रीगुरु में सब भावों में जिसकी भक्ति सदा स्थिर है, उसके हाथ में धर्म-अर्थ-काम क्या, मोक्ष तक विद्यमान रहता है। 'वे शिव ही गुरु-रूप से मुझे भुक्ति-मुक्ति-दायक हैं'—इस प्रकार भक्ति से जो स्मरण करता है, उसे उत्तम सिद्धि मिलती है। हे देवि! जिसे गुरु में वैसी ही परम भक्ति होती है, जैसी देवता में, उसे उन अर्थों का ज्ञान हो जाता है, जो मैंने तुम्हें बताये हैं। नारायण, महा-देव, माता-पिता और राजा के प्रति जैसी भक्ति होती है, वैसी ही गुरु के प्रति करे। श्रीगुरु और गुरु-पत्नी को लक्ष्मी-नारायण, सरस्वती-ब्रह्मा, गिरिजा-शिव, माता-पिता के रूप में ध्यान करे। गुरु की भक्ति से जिस प्रकार सब सिद्धियाँ मिलती हैं, उस प्रकार सब दानों, तपों, तीर्थों, व्रतों आदि से नहीं मिलतीं। श्रीगुरु में निश्चला भक्ति जैसे-जैसे बढ़ती है, वैसे-ही-वैसे विशेष ज्ञान की प्राप्ति होती है। तीर्थादि महान् श्रम और व्रतों से शरीर सुखाने से क्या लाभ, सद्गुरु की भक्ति तो निर्व्याज-सेवा है। शरीर को कष्ट देकर, महान् तप से जो फल मिलता है, वह गुरु-सेवा द्वारा सुख से मिल जाता है। भोग-मोक्ष और ब्रह्मा-विष्णु-महेश के पद की आकांक्षा करनेवालों के लिये गुरु-भक्ति ही एक मार्ग है, अन्य नहीं, ऐसा श्रुति कहती है। महा-पापों से उत्पन्न अशुभ कर्मों को भक्ति क्षण भर में जला डालती है, जैसे अग्नि रुई के ढेर को भस्म कर देती है। सब सिद्धियों के देनेवाले उस विश्वास को नमस्कार है, जिससे सृष्टि तत्काल ही पूर्ण फल को प्रदान करती है। योग, तप, पूजा-

क्रम–किसी से भी माया दूर नहीं होती। माया-रहित इस कुल-मार्ग में भक्ति की ही विशेषता है। गुरु द्वारा व्याप्त समस्त भुवनों में सभी भक्तों को मन्त्र सिद्ध होता है।

गुरु को मनुष्य न समझे

गुरु को मनुष्य, मन्त्र को अक्षर और प्रतिमा को पत्थर समझनेवाला नरक में जाता है। गुरु को मरणशील न माने क्योंकि वैसा मानने से मन्त्रों या देव-पूजाओं से कभी सिद्धि नहीं मिलती। श्री गुरु को साधारण मनुष्यों के साथ जो स्मरण करते हैं या उनकी चर्चा करते हैं, उनके सभी पुण्य पाप बन जाते हैं। जन्म देने के कारण माता-पिता की पूजा प्रयत्न-पूर्वक करनी चाहिये। धर्म-अधर्म का ज्ञान करानेवाले गुरु विशेष रूप से पूजनीय हैं। गुरु पिता, माता और महेश-स्वरूप हैं। शिव के रुष्ट होने पर गुरु रक्षा करते हैं किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर कोई नहीं बचा सकता। गुरु को जो प्रिय हो, वही मन-वचन-शरीर-कर्म द्वारा करे। उनका अप्रिय करने से विष्ठा में कीड़े का जन्म मिलता है। जो शरीर, धन और प्राणों से श्री गुरु को धोखा देते हैं, वे निस्सन्देह कीड़े और पतङ्गों का जन्म पाते हैं।

गुरु और मन्त्र के छोड़ने में दोष

मन्त्र का त्याग करने से मृत्यु, गुरु का त्याग करने से दरिद्रता और गुरु एवं मन्त्र का त्याग करने से रौरव नरक की प्राप्ति होती है।

गुरु के प्रति क्या करे, क्या न करे

गुरु के लिए शरीर रखे, उन्हीं के लिए धन कमाए और अपने प्राणों को छोड़कर भी गुरु का कार्य सम्पन्न करे। गुरु के कठोर वचन को आशीर्वाद समझे। उनकी ताड़ना को भी उनका प्रसाद माने। भोग्य-भोज्य वस्तुएँ गुरु को अर्पित करे और उनसे बचा हुआ मानकर उन्हें प्रसाद-रूप में ग्रहण करे। गुरु के सामने न तप करे, न उपवास-व्रत-तीर्थ-यात्रा आदि और न अपनी शुद्धि के लिए स्नान ही करे। गुरु की अवज्ञा न करे, तुम कहकर न बोले; शिष्य होकर ऋण देना-लेना या वस्तुओं को खरीदना-बेचना गुरु के साथ कभी न करे। नास्तिकों से दूर रहे। नास्तिकों के साथ वाद-विवाद क्या, बात भी न करे। उन्हें देख कर दूर चला जाय और कभी उनके साथ न रहे। हे अम्बिके! गुरु के निकट होने पर जो अन्य की पूजा करता है, उसकी वह पूजा निष्फल होती है और वह घोर नरक में पड़ता है। गुरु-चरण-कमलों को धारण करनेवाले शिर पर कभी बोझ न ले जाय। उनकी आज्ञा से ही कार्य करे क्योंकि गुरु आज्ञा-स्वरूप हैं। अन्य स्थान पर सुने हुए मन्त्र, आगम आदि को गुरु को बताए और उनकी आज्ञा से ग्रहण करे। उनके द्वारा मना किए गए मन्त्रादि से दूर रहे। अपने शास्त्र में कहे गये रहस्यार्थ को जिस किसी को न बताए, जो बताता है, वह 'समय' से च्युत होता है, इसमें सन्देह नहीं। नित्य अद्वैत भाव रखे, गुरु से कभी द्वैत-भाव न रखे। अपने समान ही सभी प्राणियों का हित करे। सेवा-सुश्रूषा चार प्रकार से होती है–१ आत्मा से, २ धन से, ३ सम्मान से और ४ सद्भाव से। सेवा-बुद्धि से गुरु को सन्तुष्ट करे। गुरु, देवता और महात्माओं की सेवा में लगा हुआ निश्चय ही पग-पग पर अश्वमेध का फल पाता है।

केवल गुरु-सेवा से ही तुम्हारी कृपा मिल जाती है। सद्-भक्ति के साथ यदि सेवा करे, तो सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। गुरु की सेवा से सभी पाप नष्ट होते हैं, पुण्य-राशि बढ़ती है और सभी कार्य होते हैं। जो-जो वस्तु अपने को प्रिय हो, वह गुरु को अर्पित करे। जो गुरुदेव की चर्चा करता है, उसके पुण्य की गणना नहीं हो सकती। भक्ति से यथा-शक्ति गुरु के लिये जो किया जाता है, वह थोड़ा या बहुत निर्धन या धनी का पुण्य एक समान होता है। गुरु को सर्वस्व भी जो बिना भक्ति के देता है,

वह उसका फल नहीं पाता क्योंकि भक्ति ही मूल है। जिस द्रव्य में गुरु की इच्छा हो, उसे स्वयं न ग्रहण करे। यदि बहुत इच्छा हो, तो उनकी अनुमति से उसे ग्रहण करे। जो लोभ या मोह से गुरु के धन का तिलार्ध या उसके आधे बराबर भी अंश का उपयोग करता है, वह नरक में जाता है। बिना दिये हुये गुरु के अत्यल्प द्रव्य को भी जो स्वीकार करता है, वह तिर्यग्-योनि को पाता है और उसे क्रव्याद खाते हैं। गुरु-द्रव्य की इच्छा करनेवाले, गुरु-स्त्री-गमन में उत्सुक होनेवाले पतित नीच के लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। आज्ञा न मानना, धन चुराना और गुरु का अप्रिय करना—इन्हें 'गुरु-द्रोह' कहा गया है। जो करता है, वह पापी है। गुरु को निवेदन किये बिना द्रव्य का उपभोग न करे। बिना निवेदन किए जो उपभोग करता है, वह ब्रह्म-घाती होता है। गुरु के स्थान, सम्प्रदाय और धन को जो नष्ट करता है, वह गुरुओं द्वारा त्याज्य, दण्डनीय होकर घातकों द्वारा वध्य होता है। गुरु-क्रोध से विनाश, गुरु-द्रोह से पाप, गुरु-निन्दा से अपमृत्यु और गुरु का अनिष्ट करने से महान् आपत्ति होती है। जीवित अग्नि में प्रवेश करे या विष पी ले या मृत्यु के हाथ में पड़ जाय किन्तु गुरु का अपराध न करे।

जहाँ श्री गुरु की निन्दा हो, वहाँ से दोनों कान बन्द कर तुरन्त चला आये, जिससे पुनः वह न सुनाई पड़े। बाद में गुरु-नाम का स्मरण करे। गुरु के मित्र-सुहृद्-दासी-दास की अवज्ञा न करे और न उनके समय-वेद-शास्त्रागम आदि की निन्दा करे। गुरु की श्रीपादुका पूजा, गुरु-नाम-स्मरण जप, गुरु-आज्ञा-पालन कृत्य और गुरु-सेवा ही भजन है। जिज्ञासु देशिक (गुरु) के निवास-स्थान में शान्त चित्त, अति-भक्ति-पूर्ण होकर वाहन, पादुका, छत्र, चामर, व्यंजन और ताम्बूल, काजलादि आडम्बर छोड़कर धीरे से प्रवेश करे। गुरु की पादुका, आसन, वस्त्र, वाहन, छत्र और चामर को देखकर उन्हें नमस्कार करे। अपने उपयोग में उन्हें लाने की इच्छा न करे।

गुरु, योगी, महा-सिद्ध के पीठ, क्षेत्र, आश्रमों में पैर धोना, स्नान करना, तेल लगाना, दातून करना, मल-मूत्र त्याग करना, बाल कटाना, सोना, स्त्री-सङ्ग करना, वीरासन से बैठना, कठोर बात करना, आज्ञा चलाना, हँसना, रोना, बाल खोलना, नंगे होना, पैर फैलाना, झगड़ा करना, अङ्ग-भङ्ग करना, चिढ़ाना, मटकाना, ताली बजाना, ताल ठोकना, सिर पीटना, जुआ खेलना, कुश्ती लड़ना, नाचना-बजाना आदि नहीं करना चाहिए। मोह-वश यदि कोई करता है, तो उसे देवता का शाप मिलता है। गुरु के सम्मुख उपचारों सहित बैठे, मनमाने ढँग से नहीं। उनके मुख का दर्शन करते हुए उनकी सेवा करे और उनके कथन का पालन करे।

गुरु के कहे और न कहे कार्यों की उपेक्षा न करे। गुरु जो कहें, उसे निःशङ्क होकर करे। निग्रह और अनुग्रह—सबके कारण गुरु हैं। गुरु-मुख में जो निकले, वह सब शास्त्र कहा गया है। गुरु के कार्य में स्वयं समर्थ हो, तो बहुत से नौकरों के होते हुए भी शक्तिमान् दूसरे को न भेजे। चलते, बैठते, सोते-जागते, जपते, हवन-पूजन करते गुरु-आज्ञा का ही अन्तरात्मा से पालन करे। जाति, विद्या, धन आदि से अभिमान न करे, सदा शिष्य श्री गुरु के निकट रहकर उनकी नित्य सेवा करे। काम-क्रोध छोड़कर, विनम्र हो, स्तुति-भक्ति के साथ श्रद्धा-रूप आसन पर बैठकर गुरु का कार्य करे। अपना कार्य हो या दूसरे का, शिष्य गुरु का ध्यान करते हुए, गुरु के निकट नम्रतापूर्वक प्रसन्न-मुख होकर रहे।

गुरु द्वारा निषिद्ध सामान्य बात को भी यदि गुरु के पास कोई करता है, तो उसका दोष कोटि गुना अधिक होता है। जो अच्छे या बुरे गुरु-वाक्य का अनादर कर उसे मुंह फिरा कर सुनता है, वह रौरव नरक में जाता है। गुरु के आगे झूठ बोलने से वही पाप होता है, जो ब्राह्मण के बध से लगता है। आर्य (गुरु) के अन्यत्र जाने पर कठिन परिस्थिति में स्थित होने पर कहीं भी उनका साथ

न छोड़े, उनके आदेशानुसार ही रहे। गुरु के नीचे बैठने पर कभी ऊपर न बैठे। गुरु के आगे न चले और उनके उठने पर बैठा न रहे। शक्ति, देवता और गुरु की छाया को लांघे नहीं। उन पर अपनी छाया न डाले और गुरु के निकट सोए नहीं। बिना आज्ञा पाये और बिना वन्दना किए भाषण, पाठन, गान, भोजन, शयन आदि न करे।। गुरु-आज्ञा का पालन करने में सौ ब्रह्म-हत्या तक करे। उनकी आज्ञा बिना अन्य किसी का विश्वास न करे। गुरु की आज्ञा से सब करे, उनकी स्त्रियों की निन्दा न करे और भक्ति से हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम कर खड़ा रहे। गुरु के गृह से प्रणाम कर पीछे को पैर रखता हुआ बाहर निकले। गुरु के बराबर एक ही आसन पर न बैठे। देवता और गुरु के समीप आसन पर न बैठे। गुरु को श्रेष्ठ आसन और ज्येष्ठ लोगों को उत्तम आसन प्रदान करे। छोटों को देश्यासन और दूसरों को समासन दे। जाति-विद्या-धन से सम्पन्न व्यक्ति गुरु को दूर से ही देखकर प्रसन्न हो उन्हें दण्ड-प्रणाम करे और तीन बार उनकी प्रदक्षिणा करे। तब गुरु, परम गुरु के क्रम से अपने गुरु की तीन, छः, बारह या एक बार वन्दना करे। फिर गुरु को नमस्कार करे। श्री गुरु के समीप होने पर उन्हें मन से नमस्कार न करे। गुरु-बुद्धि से देवता या तृण तक सबको नमस्कार करे। देव-बुद्धि से लोहे और मिट्टी की प्रतिमा को नमस्कार न करे। गुरु को तीन बार, ज्येष्ठों को एक बार प्रणाम करे और पूज्यों को हाथ जोड़कर तथा अन्यों को वाक्य से वन्दना करे। देवों, गुरुओं, कुलाचार्यों, ज्ञानियों, तपस्वियों, विद्वानों, स्वधर्मियों को प्रणाम करे। स्त्री-द्वेषी, गुरुओं से शापित, पाखण्डी पण्डित, ठग, दुष्कर्मी, कृतघ्न, और अनाश्रमी को नमस्कार न करे।

एक ही स्थान में रहते हुये जो गुरु को निवेदित किये बिना भोजन करता है, उसका अन्न अमेध्य हो जाता है और मरने पर वह शूकर होता है।

गुरु को प्रणाम करने के नियम

गुरु-शिष्य एक ही स्थान में रहते हों, तो शिष्य गुरु को तीनों सन्ध्याओं में प्रणाम करे। एक क्रोश की दूरी पर रहनेवाला शिष्य गुरु को प्रतिदिन और आधे योजन की दूरी पर रहनेवाला पक्ष-पर्वों में प्रणाम करे। एक योजन से बारह योजन की दूर पर रहनेवाला शिष्य उनकी संख्या के दिनों या महीनों में श्री गुरु को प्रणाम करे। दूर देश में स्थित शिष्य उतने योजन की संख्या के महीनों में गुरु के पास आकर भक्ति-पूर्वक प्रणाम करे। बहुत दूर गया हुआ शिष्य जब इच्छा हो, तब आये।

राजा, देवता और गुरु के पास खाली हाथ न जाय। यथा-शक्ति फल, पुष्प, वस्त्रादि अर्पित करे। ऐसा जो नहीं करता, वह ब्रह्म-राक्षस होता है। गुरु-शक्ति, गुरु-पुत्र और गुरु का ज्येष्ठ भ्राता—ये गुरु माने गये हैं। छोटे को आत्म-वत् समझकर पुत्र के समान उसका पालन करे। कुलाचार्य के ज्येष्ठ और कनिष्ठ दोनों सम्बन्धियों को गुरु-तुल्य ही प्रणाम करे। १ याग (योग) में ज्येष्ठ, २ क्रम में ज्येष्ठ, ३ कुल में ज्येष्ठ और ४ गुरु का ज्येष्ठ पुत्र—ये चार ज्येष्ठ माने गये हैं। याग-ज्येष्ठ को अभिवादन से और क्रम-ज्येष्ठादि को अष्टाङ्ग-योग से तथा गुरु एवं कुल-वृक्ष इन दोनों को यथा-विधि वन्दन करे। पिता-आदि सभी कोटि पूज्य बन्धुओं के प्रति उठकर प्रणाम आदि स्पष्ट रूप से करे। न करने से दोष होता है। जब अपने को आचार्य-रूप में प्रकट करे, तब उठकर प्रणामादि करने से दोष होता है। पशु-पति होकर जो पशुओं को प्रणाम करता है, वह महा-पशु कहा जाता है और उसे देवता का शाप मिलता है। जो पादुका-परिसंख्या से गुरु-स्थान को प्राप्त करता है, वह ज्येष्ठों और पुत्रों में गुरु-वत् माननीय है।

इस प्रकार संक्षेप में मैंने तुमसे पादुका-भक्ति के लक्षण बताये। अब तुम क्या सुनना चाहती हो?

तेरहवाँ उल्लास : गुरु-शिष्य-लक्षण

श्री देवी ने कहा—हे कुलेश ! मैं गुरु-शिष्य दोनों के लक्षण सुनना चाहती हूँ ।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो, जो तुमने मुझसे पूछा है, उसे कहूँगा, जिसके सुनने मात्र से गुरु-भक्ति उत्पन्न होती है ।

वर्जित शिष्य के लक्षण

दुष्ट वंश में उत्पन्न, गुण-हीन, कुरूप, पर-शिष्य, पाखण्डी, घमण्डी, विकृताङ्ग, पंगु, बधिर, मलिन, रोगी, दुर्मुख, मनमाने वंशधारी, अङ्ग-चेष्टा-गति-भाषण-वीक्षण से विकार प्रकट करनेवाले, निद्रा-तन्द्रा-जड़तादि से युक्त आलसी, द्यूतादि-व्यसनी, द्वार-स्तम्भादि के पीछे छिपनेवाले, अन्तर्भक्ति करनेवाले, क्षुद्र, बाह्य-भक्ति से हीन, मिथ्यावादी, स्तब्ध, शठ, धन-स्त्री की शुद्धि से रहित, विधि-निषेध को न माननेवाले, रहस्य को ढूँढ़नेवाले, कार्य बिगाड़नेवाले, बिल्ली व बगुले के स्वभाववाले, छिद्रान्वेषी, मायावी, कृतघ्न, गुप्त बात को प्रकट करनेवाले, विश्वासघाती, स्वामि-द्रोही, पापी, अविश्वासी, संशयालु, सिद्धि-कांक्षी, आततायी, क्रोधी, ठगनेवाले, सर्वश्रेष्ठ होने का अभिमान करनेवाले, निष्ठुर, आसक्त, गँवार, बहु-भाषी, कुतर्की, झगड़ालू, व्यर्थ आक्षेप करनेवाले, मूर्ख, चञ्चल, बात बनानेवाले, सामने प्रिय और पीठ पीछे दोष कहनेवाले, वाणी से ब्रह्मवादी, विद्या चुरानेवाले, आत्म-प्रशंसक, गुणों को न सहनेवाले, कष्ट में व्याकुल होनेवाले, नास्तिक, दुर्जनों के साथ रहनेवाले, सर्व-लोक-निन्दित, चुगुलखोर, पर-सन्तापी, अपने कष्ट को कहनेवाले, आत्म-वञ्चक, जिह्वोपस्थ में आसक्त, चोर, पशु चेष्टावाले, अकारण द्वेष-हास-क्रोध करनेवाले, दुस्साहसी, मार्मिक परिहास करनेवाले, कामुक, निर्लज्ज, असूया-मद-मात्सर्य-दम्भ-अहङ्कार से युक्त, ईर्ष्या-पारुष्य-पैशुन्य-कृपणता से युक्त मनवाले, अधीर, दुखी, भीरु, अशक्त, व्याकुल, मन्द-बुद्धि, मूढ़, चिन्ताकुल, तृष्णा-लोभ से युक्त, दीन-असन्तोषी, सबसे माँगनेवाले, कपटी, भ्रम फैलानेवाले, कुटिल, भक्ति-श्रद्धा-दया-शान्ति-धर्माचार से हीन, माता-पिता-गुरु-प्राज्ञ के सद्-वचनों की हँसी उड़ानेवाले, कुल-द्रव्यों के प्रति वीभत्स, गुरु-सेवा का अभिमान करनेवाले, स्त्री-द्वेषी, समयाचार से भ्रष्ट, गुरु से शापित आदि—इस प्रकार के दुर्गुण-युक्त व्यक्ति को गुरु शिष्य न बनाये ।

ग्राह्य शिष्य के लक्षण

हे कुलेशानि ! सच्छिष्य शुभ लक्षणों से युक्त होता है । श्रमादि साधनों से युक्त, गुण-शीलवाले, शुद्ध-शरीर, प्राज्ञ, धार्मिक, शुद्ध-मन, दृढ़-व्रती, सदाचारी, श्रद्धा-भक्ति से युक्त, दक्ष, अल्प-भोजी, गूढ़-चित्त, निःस्वार्थ सेवा करनेवाले, विवेकी, वीर, दरिद्रता से रहित, सब कार्यों में कुशल, सर्वोपकारी, कृतज्ञ, पाप से डरनेवाले, साधु-सज्जन से सम्मत, आस्तिक, दानी, सब प्राणियों की भलाई करनेवाले, विश्वास और नम्रता से युक्त, धन-देह से अवञ्चक, असाध्य को सिद्ध करनेवाले, शूर, उत्साह-बल से युक्त, अनुकूल कार्य करनेवाले, अप्रमादी, बुद्धिमान्, प्रिय-सत्य-अल्प और सहर्ष बोलनेवाले, दोष-मुक्त, एक बार कहे को समझनेवाले, चतुर, अपनी प्रशंसा और दूसरी की निन्दा से विमुख, जितेन्द्रिय, सन्तुष्ट, ब्रह्मचारी, आधि-व्याधि-चापल्य-दुःख-भ्रान्ति-सन्देह से रहित, गुरु के ध्यान-स्तुति-कथा और देवता की पूजा-वन्दना में उत्सुक, गुरु-दैवत में समान भक्ति रखनेवाले, स्त्री-पूजक, नित्य गुरु के समीप रहनेवाले, गुरु को सन्तुष्ट करनेवाले, मन-वचन-शरीर से नित्य सेवा में तत्पर, गुरु-आज्ञा का पालन करनेवाले, गुरु-कीर्ति को फैलानेवाले, गुरु-वाक्य को प्रमाण माननेवाले, गुरु-सेवा में तत्पर, मनोनुकूल, गुरु के समक्ष जाति-मान-धन में गर्व न करनेवाले, गुरु-द्रव्य से निरपेक्ष, गुरु-प्रसाद के अभिलाषी, कुलधर्म-कथा और योग-योगिनी-कौलिकों को चाहनेवाले, जप-ध्यानादि में तत्पर, मोक्ष-मार्ग के अभिलाषी, कुल-शास्त्र को माननेवाले और पशु-शास्त्र से विमुख आदि—इस प्रकार के लक्षणों से युक्त व्यक्ति को शिष्य बनाए ।

गुरु के लक्षण

शुद्ध-वेषधारी, मनोहर, सर्व-लक्षण-सम्पन्न, सर्वाङ्ग-पूर्ण, सभी आगमों के तत्त्वार्थ के ज्ञाता, सभी मन्त्रों के विधान के ज्ञाता, लोक को सम्मोहित करनेवाले, देव-स्वरूप, प्रिय-दर्शन, सुमुख, सुलभ, स्वच्छ, भ्रम-संशय-नाशक, इङ्गित और आकार के प्राज्ञ, ऊहा-पोह के विशेषज्ञ, अन्तर्मुखी होते हुये भी वहिर्दृष्टि रखनेवाले सर्वज्ञ, देश-काल के ज्ञाता, आज्ञा-सिद्ध, त्रिकालज्ञ, निग्रह-अनुग्रह में समर्थ, बेधक, बोधक, शान्त, सर्व-जीवों पर दयालु, जितेन्द्रिय, षड् वर्गों को जय करने में समर्थ, अग्रगण्य, गम्भीर, पात्र-अपात्र के विशेषज्ञ, शिव-विष्णु के समान, साधु, पशु-दर्शन के दोष बतानेवाले, निर्मल, नित्य-सन्तुष्ट, स्वतन्त्र, मन्त्र-शक्तिमान्, भक्त-वत्सल, धीर, कृपालु, प्रसन्न-मुख, भक्ति-प्रिय, सब शास्त्रों के ज्ञाता, शुभ, शिष्ट, अपने इष्ट-देव और गुरुओं, ज्येष्ठों, वनिताओं के पूजन में उत्सुक रहनेवाले, नित्य-नैमित्तिक-काम्य कर्मों में तत्पर रहनेवाले, राग-द्वेष-भय-क्लेश-दम्भ-अहङ्कार से रहित, अपनी विद्या के अनुष्ठान में लगे हुये, तपोधर्म का प्रकाश करनेवाले, यथा-प्राप्त से सन्तुष्ट, गुण-दोष के विवेचक, स्त्री-धनादि में अनासक्त, दुःसङ्ग-व्यसनादि से रहित, सर्वाहं-भाव से युक्त, निर्द्वन्द्व, व्रत-परायण, अलोलुप, अहिंसक, विद्वान्, धन-विद्यादि द्वारा मन्त्र-यन्त्र-तन्त्रादि को न बेचनेवाले, निःसङ्ग, निर्विकल्प, अर्थ-निर्णायक, अति धार्मिक, निन्दा-स्तुति में सम-भाव रखनेवाले, निरपेक्ष, नियम-निर्देश करनेवाले इत्यादि—इस प्रकार लक्षण-युक्त श्रीगुरु कहे गये हैं।

निराकार होते हुये भी 'शिव' का गुरु-रूप

जो शिव सर्व-व्यापी, सूक्ष्म, उन्मना, निष्कल, अव्यय, व्योमाकार, अजन्मा और अनन्त हैं, उनकी पूजा करना कैसे सम्भव है? इसी से शिव साक्षाद् गुरु-रूप का आश्रय लेते हैं और भक्ति से सम्पूजित होकर भुक्ति एवं मुक्ति को प्रदान करते हैं। हे देवि! मैं शिव हूँ। मेरी कोई आकृति नहीं है। मनुष्यों की दृष्टि में आनेवाला मैं नहीं हूँ। इसलिये श्रीगुरु-रूप से शिव शिष्यों की सदा रक्षा करते हैं। मनुष्य-चर्म में साक्षात् पर-शिव स्वयं आबद्ध होते हैं और पृथ्वी पर गुप्त रूप से सच्छिष्यों पर अनुग्रह करने के लिये भ्रमण करते हैं। सद्-भक्तों की रक्षा के लिए ही निराकार भी आकृति-युक्त होता है। दया-सागर शिव इस लोक में संसारी के समान चेष्टा करते हैं। ललाट के लोचन, चन्द्र-कला और दो भुजाओं को अन्तर्हित कर वे पृथ्वी पर गुरु-रूप से विद्यमान रहते हैं।

श्री गुरुदेव का ब्रह्मा-विष्णु-शिवत्व

शिव त्रिनेत्र-हीन होकर, विष्णु चतुर्भुजाओं से हीन होकर और ब्रह्मा चतुर्मुखों से हीन होकर साक्षात् 'श्रीगुरु' कहलाते हैं। पाप-कर्मों के कारण पापियों को श्रीगुरु मनुष्य-समान और पुण्य कर्मों के कारण पुण्यात्माओं को श्रीगुरु शिव-समान संसार में दिखाई देते हैं। आँखों के सामने श्रीगुरु परम तत्व-स्वरूप विद्यमान हैं, किन्तु भाग्य-हीन लौग उन्हें देख नहीं पाते, जैसे अन्धे उदय हुये सूर्य को नहीं देखते। गुरु साक्षात् सदाशिव हैं, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं। गुरु शिव ही न होते, तो भुक्ति और मुक्ति को कौन देता? भगवान् सदाशिव और श्रीगुरु—इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। जो उनमें अन्तर समझता है, वह पापी है। देशिक की आकृति को धारण कर पशु के समस्त पाशों को काट कर वे उसे परम पद को पहुँचाते हैं, अतः 'गुरु' कहलाते हैं। दया-निधि ईश्वर सब पर अनुग्रह करने के लिये 'आचार्य' का रूप धारण कर दीक्षा द्वारा पशुओं का मोक्ष करते हैं।

देवता, मन्त्र और गुरु में अभेद

जिस प्रकार घट, कलश और कुम्भ इन तीनों शब्दों का एक ही अर्थ है, उसी प्रकार देवता,

मन्त्र और गुरु एक ही अर्थ के वाचक बताए गये हैं। जो देव है, वही मन्त्र है और जो मन्त्र है, वही गुरु है। अतः देवता, मन्त्र और गुरु की पूजा का समान फ़ल होता है। हे पार्वति ! शिव-रूप धारण कर मैं पूजा को स्वीकार करता हूँ।

श्रेष्ठ गुरु के लक्षण

'सिद्धान्त का सार जाननेवाला मैं वीज हूँ', इस प्रकार का बोध देनेवाला सदा आनन्दित रहनेवाला 'गुरु' कहलाता है। आश्रमों और वर्णों का लङ्घन कर सदा आत्मा में स्थित रहता है और ज्योति-रूप वर्णाश्रमवाला योगी है, वह 'गुरु' कहा गया है। आधारों और छः अध्वानों को जो विधिपूर्वक जानता है; दृश्य के बिना जिसकी दृष्टि स्थिर रहती है, आलम्बन के बिना जिसका मन स्थिर रहता है और श्रम किए बिना जिसका प्राण (वायु) स्थिर रहता है; सम्वित्ति को प्रकट करनेवाले और परानन्द के उद्भव करनेवाले तत्त्व को जो जानता है; भूत-भविष्य, तन्त्र-मन्त्र, शाक्त-शाम्भव, छः प्रकार के वेधों को जो जानता है, वही 'वेध करनेवाला गुरु' है।

१ पद, २ वर्ण (मन्त्र), ३ कला, ४ मन्त्र (यन्त्र), ५ मण्डल (तत्त्व), ६ भुवन (गुण)—इन छः अध्वानों को जो शुद्ध करता है; १ वेध, २ घट (पद), ३ निरोध (विरोध), ४ ग्रहण, ५ मोक्षण—इन्हें जो भले प्रकार जानता है; १ जाग्रत्, २ स्वप्न, ३ सुषुप्ति, ४ तुरीय, ५ तुरीयातीत—इन पाँचों को जो जानता है; १ पिण्ड, २ पद, ३ रूप, ४ रूपातीत—इन चारों को जो भले प्रकार जानता है; १ परा, २ पश्यन्ती, ३ मध्यमा, ४ वैखरी—इन चारों को जो जानता है; १ आत्म, २ विद्या, ३ शिव, ४ सर्व—इन चारों तत्त्वों को जो जानता है; १ पाशच्छेद (पशु-स्तम्भ), २ वेध-दीक्षा, ३ पशु-ग्रहण (पशुत्व-हन))—इन तीन को जो जानता है; पद और पशुओं के पाशों का रहस्यार्थ जो जानता है; १ चक्र-सङ्केत, २ मन्त्र (यन्त्र)-संकेत और ३ पूजा-संकेत—इन तीनों को जो जानता है; १ वाण, २ इतर, ३ स्वयम्भ नामक तीन लिङ्गों की संस्थिति को वस्तुतः जो जानता है; १ आणव (आत्मज) २ कार्मण (कर्मज) और ३ मायीय (मायिक)—इन तीन मलों को शुद्ध करने में जो समर्थ है; १ रक्त, २ शुक्ल, ३ मिश्र (कृष्ण) नामक तीन चरणों की वासना (भावना) को जो जानता है; १ महा-मुद्रा, २ नभोमुद्रा, ३ उड्डीयान, ४ जलन्धर और ५ मूल-वन्ध को जो जानता है; शिव से क्षिति पर्यन्त ३६ तत्वों का निर्णय है, उसे जो वस्तुतः जानता है; अन्तर्याग, बहिर्याग, कला-ज्ञान-स्थिति और वाधा-मन्त्र-विधान को जो जानता है; पिण्ड और ब्रह्माण्ड के ऐक्य को तथा शिरा-अस्थि-रोम की संख्यादि को जो वस्तुतः जानता है; पद्मादि ८४ आसनों और यमादि अष्टाङ्ग-योग का जो ज्ञाता है, वही श्रेष्ठ 'गुरु' है।

१ घृणा (या तृष्णा), २ शङ्का (या शोक), ३ भय, ४ लज्जा, ५ जुगुप्सा, ६ कुल, ७ शील, ८ जाति—ये आठ पाश कहे गये हैं। पाश से बँधा हुआ 'पशु' और पाश से छुटा हुआ 'शिव' माना गया है। अतः जो पाशों को दूर करता है; वही श्रेष्ठ 'गुरु' है। योनि-मुद्रा का बाँधना, मन्त्र-चैतन्य-विधि और यन्त्र-मन्त्र का स्वरूप जो जानता है; १ विनिक्षिप्त, २ गत-आयात, ३ संक्लिष्ट और ४ विनीतक—मन की इन चार अवस्थाओं को जो जानता है, मूलाधार से ब्रह्म-रन्ध्र तक सात पद्म-दलों में जीव की गति का फल जो जानता है; शिव से गुरु तक की परम्परा के क्रम से तत्व-सम्भार का जो ज्ञाता है, वही श्रेष्ठ 'गुरु' है।

जिसके द्वारा तत्व-ज्ञान कराने पर साधक उसमें तुरन्त तन्मय होकर अपने को मुक्त अनुभव करने लगे, वही 'गुरु' है। जो सहजानन्द देकर इन्द्रिय-जन्य सुख की आसक्ति को दूर करते हैं, वही गुरु सेवनीय हैं, अन्यों को ठग समझकर शिष्य त्याग दें। संसार के भय से डरे हुये शिष्य को व्रतोपवास-

नियमों से नियन्त्रित करनेवाला ही 'गुरु' है। जो क्षण भर में प्रसन्न होकर मोक्ष-रूपी रत्न प्रदान करता है, उसे संसार से उद्धार करनेवाला दुर्लभ गुरु समझे। जो क्षण भर में किसी क्रिया या परिश्रम के बिना अपनी शक्ति शिष्य को देता है; जो तुरन्त आश्वस्त करता है और आत्म-सुख-दायक ज्ञानोपदेश देता है, वह 'गुरु' देवताओं को भी दुर्लभ है।

जैसे एक द्वीप से दूसरे द्वीप में सहज ही जाना होता है, वैसे ही अभ्यासादि के बिना जो ज्ञान प्रदान करता है, वही श्रेष्ठ 'गुरु' है। जैसे भूखे को भोजन मिलने से तुरन्त तृप्ति होती है, वैसे ही उपदेश मात्र से ज्ञान देनेवाला 'गुरु' दुर्लभ है।

घर-घर में दीपक समान गुरु बहुत हैं किन्तु सूर्य के समान समस्त ज्ञान का दाता गुरु दुर्लभ है। वेद-शास्त्रादि के मर्मज्ञ गुरु बहुत हैं, किन्तु पर-तत्व के अर्थ को जाननेवाला गुरु दुर्लभ है। पृथ्वी पर ऐसे गुरु बहुत हैं, जो अपना ज्ञान दूसरे को देते हैं किन्तु संसार में आत्म-ज्ञान को प्रकाशित करनेवाला गुरु दुर्लभ है। मन्त्र और औषधि को जाननेवाले गुरु बहुत हैं किन्तु निगमागम शास्त्र में कथित मन्त्रों का ज्ञाता गुरु दुर्लभ है। शिष्य के धन को लेनेवाले गुरु बहुत है किन्तु उसके दुःख को दूर करनेवाला गुरु दुर्लभ है। वर्णाश्रम और कुलाचार में तत्पर गुरु पृथ्वी पर बहुत हैं किन्तु सभी सङ्कल्पों से रहित गुरु दुर्लभ है।

जिस गुरु के सम्पर्क मात्र से परमानन्द का अनुभव हो, उसी को बुद्धिमान् व्यक्ति गुरु बनाए। जिसकी बुद्धि अनुभव तक पहुँची हुई है, उसके दर्शन मात्र से मुक्ति मिलती है, इसमें सन्देह नहीं। शङ्का के द्वारा चराचर तीनों लोक नष्ट हो जाते हैं, उस शङ्का को जो नष्ट करता है, वह गुरु दुर्लभ है। जैसे अग्नि के पास रखा मक्खन पिघल कर विलीन हो जाता है, वैसे ही सद्गुरु के पास पाप विलीन हो जाता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखी और गीली लकड़ी को क्षण भर में भस्म कर देती है, वैसे ही गुरु का कटाक्ष शिष्य के पाप को क्षण भर में नष्ट कर देता है। जैसे तेज हवा से उड़ाई हुई रुई दस दिशाओं में फैल जाती है, वैसे ही सद्गुरु के दर्शन मात्र से अज्ञान नष्ट हो जाता है। सर्व-लक्षण-सम्पन्न, वेद-शास्त्र-विधि और सभी उपायों का ज्ञाता, तत्व-ज्ञानी ही गुरु है। जो तत्व को नहीं जानता, उसकी पूजा-होम-आश्रमाचार-तप-तीर्थ-व्रतादि और मन्त्रागमादि का विज्ञान निष्फल होता है। परम तत्त्व को स्वयं जानने पर ही आत्म-ज्ञान होता है। जिसकी आत्मा पर अनुग्रह नहीं हुआ है, वह दूसरे पर अनुग्रह कैसे कर सकता है ? अपने शरीर में स्थित मन के प्रत्यक्ष ब्रह्मात्मक स्वरूप को जो नहीं जानना, वह दूसरे को मोक्ष कैसे दे सकता है ?

तत्त्व-ज्ञानी ही वास्तविक गुरु

सर्व-लक्षणों से ही होता हुआ भी तत्त्व-ज्ञानी 'गुरु' माना गया है क्योंकि तत्त्व-ज्ञाता ही मुक्ति-दाता है। जो तत्त्वज्ञ है, वही साधु-जनों को प्रबुद्ध करता है। तत्त्व-हीन को अध्यात्म का तत्व-ज्ञान नहीं होता। तत्त्वज्ञ से उपदेश पानेवाले तत्त्वज्ञ होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। पशुओं से उपदेश पानेवाले पशु कहे जाते हैं। विद्ध ही वेधन करता है, अविद्ध वेधक नहीं होता। मुक्त ही बद्ध को छुड़ाता है। जो मुक्त नहीं है, वह मोचक कैसे होगा ? विज्ञ ही मूर्ख का उद्धार करता है; मूर्ख मूर्ख का उद्धार नहीं करता। नौका ही शिला को पार लगाती है; शिला शिला को पार नहीं लगाती। केवल संसार में तत्पर तत्व-हीन गुरु को पाकर मनुष्य इस लोक में या पर-लोक में कुछ भी फल नहीं पाता।

गुरु के भेद

शैव मत में तीन, वैष्णव मत में पांच, वेद-शास्त्रों में सैकड़ों गुरु कहे गये हैं किन्तु कुल-शास्त्र में एक ही गुरु वताया है। १ प्रेरक, २ सूचक, ३ वाचक, ४ दर्शक, ५ शिक्षक और ६ बोधक—ये छः गुरु माने गये हैं। इनमें से पांच तो कार्य-भूत हैं, छठा 'बोधक' गुरु कारण होता है। बहुत गुरुओं के होने पर भी जो गुरु पूर्णाभिषेक करता है, उसी की पादुका हे महेशानि ! पूजनीया है, इसमें सन्देह नहीं। संशय को दूर करनेवाले ज्ञान-दायक गुरु को पाकर दूसरे गुरु का आश्रय नहीं लेना चाहिये। यदि गुरु अनभिज्ञ हो, उसके द्वारा संशय का निराकरण न होता हो, तो दूसरे गुरु के पास जाने में दोष नहीं है। जिस प्रकार शहद का लोभी भौंरा एक फूल से दूसरे फूल को जाता है, उसी प्रकार ज्ञान के लोभी शिष्य को एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाना चाहिये।

इस प्रकार संक्षेप में मैंने तुमसे गुरु-शिष्य के कुछ लक्षण कहे। अब हे कुलेशानि ! और क्या सुनना चाहती हो ?

चौदहवाँ उल्लास : गुरु-शिष्य-परीक्षा

श्री देवी ने कहा—हे कुलेश ! मैं गुरु और शिष्य को परीक्षा के सम्बन्ध में सुनना चाहती हूँ। साथ ही उपदेश का क्रम और दीक्षा के भेद भी मुझे वताइये।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो, जो तुमने मुझसे पूछा है, उसे मैं वताऊँगा, जिसके सुनने मात्र से चित्त की शुद्धि होती है।

दीक्षा विना मोक्ष नहीं, आचार्य विना दीक्षा नहीं

शिव के शासन में दीक्षा के विना विप्रों का मोक्ष नहीं होता। वह दीक्षा आचार्य-परम्परा के विना नहीं होती। अतः सम्प्रदाय आदि साधनों से सिद्धान्त को जान कर आन्तरिक उपदेश देनेवाले को प्राप्त करे, अन्यथा मन्त्र निष्फल होते हैं। परम्पर के प्रवर्तक, मन्त्र और आगम के ज्ञाता, समयाचार के पालन करनेवाले गुरु को ही देवता मानते हैं। शिव की आज्ञा से विरक्त होते हुये भी गुरु कुछ समय में शिष्य के अधिकार को समझकर उसे अधिकार देते हैं।

दीक्षा से यहाँ पर-शिव से मिलन और देहान्त होने पर मुक्ति-लाभ

गुरु द्वारा अधिकार पानेवाले शिष्य को साक्षात् पर-शिव से 'योग' की प्राप्ति होती है और देहान्त होने पर उसे शाश्वत मोक्ष मिलता है, यह शङ्कर का वचन है। अतः हे प्रिये ! सब प्रयत्न करके साक्षात् पर-शिव द्वारा निर्दिष्ट सम्प्रदाय को गुरु सदा अग्रसर करता रहे।

मन्त्रोपदेश की विधि

शक्ति की सिद्धि को सुनिश्चित करने के लिये गुरु विधिपूर्वक शिष्य की परीक्षा लेकर तब उसे उपदेश करे अन्यथा मन्त्र निष्फल होता है। जो अन्याय से मन्त्र देता है और जो अन्याय से लेता है, वे मन्त्र-दाता ओर मन्त्र-प्राप्त-कर्ता दोनों ही कुल-शाप को प्राप्त करते हैं।

बिना परीक्षा दीक्षा-दाता गुरु व शिष्य दोनों दोषी

यदि कोई गुरु और शिष्य मोह-वश एक दूसरे की परीक्षा लिये बिना ही उपदेश देते और लेते हैं, तो वे दोनों ही पिशाच होते हैं। अशास्त्रीय उपदेश को जो देते-लेते हैं, वे दोनों ही अनेक वर्षों तक घोर नरक में वास करते हैं। जो असंस्कृत उपदेश देता है, वह पापी है और उसका मन्त्र बालू में बीज के समान नष्ट होता है। अयोग्य के पास मन्त्र-विज्ञान कभी नहीं ठहरता, अतः परीक्षा लेकर ही उपदेश करे, अन्यथा निष्फल होता है।

समय-दीक्षा के बाद उपदेश

समय-दीक्षा कर समय-पादुका देकर शिष्य को अपने पास बैठाकर मन्त्र कहे, अन्यथा नहीं। अत्यन्त भक्त, सत्-शिष्य को जो ज्ञानोपदेश किया जाता है, वह अखण्ड शास्त्रार्थ का ज्ञान-दायक होता है किन्तु भक्ति-हीन, असत्-शिष्य को जो ज्ञान दिया जाता है, वह कुत्ते द्वारा स्पृष्ट गो-दुग्ध के समान अपवित्र होता है। धन की इच्छा, भय, लाभादि से यदि अयोग्य को दीक्षा दी जाती है, तो वह निष्फल होती है और देवता का शाप मिलता है।

शिष्य-परीक्षा की विधि

शिष्य के ज्ञान और क्रिया दोनों की परीक्षा एक वर्ष तक या छः मास तक या तीन मास तक गुरु यत्न करके ले। प्राण, द्रव्य, प्राणायामादि आदेशों द्वारा निम्न कर्मों में उत्तम और उत्तम कर्मों में निम्न क्रियाएँ स्वयं कर उन कर्मों के सूचक वाक्यों, मायाओं, क्रूर चेष्टाओं द्वारा पक्षपात और उदासीनता से बार-म्बार प्राकृष्ट करे और ताड़ित होकर भी जो दुःखी न हों, अपितु सदा प्रसन्न होकर यही सोचें कि 'गुरु कृपा कर रहे हैं' और श्रीगुरु का स्मरण, कीर्तन, दर्शन, वन्दन, आज्ञा-पालनादि करने में जिन्हें रोमाञ्च, कम्प, गद्गद् स्वर, डबडबाते नेत्रादि के साथ आनन्द अनुभव हो, वे इस दीक्षा-संस्कार-कर्म के योग्य हैं।

शिष्य द्वारा गुरु-परीक्षा

जप, स्तोत्र, ध्यान, होम, पूजन आदि के करने में जिसे आनन्द मिलता हो, ज्ञानोपदेश करने का सामर्थ्य जिसमें हो और जिसमें मन्त्र-सिद्धि और बोधकत्व हो—इन लक्षणों से गुरु को पहचान कर शिष्य बने, अन्यथा नहीं।

शिष्यों के तीन प्रकार

आदि, मध्य और अवसान में शक्ति-निपात के योग्य तीन प्रकार के शिष्य क्रमशः १ अधम, २ मध्यम और ३ श्रेष्ठ कहे गये हैं। आदि योग्य (अधम) में भक्ति होती है, जो दीक्षा के लिये उत्सुक होते हैं और दीक्षा पाकर अति हर्षित होते हैं। मध्य-योग्य (मध्यम) वे हैं, जो दीक्षा-समय को पाकर ज्ञान-अज्ञान से रहित होकर भक्ति द्वारा संशय-हीन होते हैं। अन्त-योग्य (श्रेष्ठ) आदि में भक्ति-हीन रहकर मध्य में भक्तिमान हो अन्त में अति भक्त होते हैं।

उपदेश के तीन भेद

१ उत्तम, २ ज्ञान और ३ संज्ञा—ये तीन भेद उपदेश के हैं। जैसे चींटी धीरे-धीरे वृक्ष के ऊपर लगे फल तक चिर-काल में पहुँचती है—वैसा ही कर्म का उपदेश माना गया है और जैसे बन्दर यत्न-पूर्वक एक डाली से दूसरी डाली को पारकर फल को प्राप्त करता है, वैसा ही क्रम धर्म के उपदेश का है। जैसे आकाश-गामी शीघ्र ही फल तक पहुँच जाता है, वैसे ही ज्ञानोपदेश की महिमा कही गई है।

तीन प्रकार की क्रिया-रहिता दीक्षा

कर्म-काण्ड से रहित दीक्षा तीन प्रकार की है—१ स्पर्श, २ दृक् और ३ मानस। जैसे चिड़िया अपने पङ्खों से बच्चों को धीरे-धीरे पालती है, 'स्पर्श-दीक्षा' भी वैसी ही कही गई है। अपने बच्चों को जैसे मछली केवल देखकर ही पालती है, उसी प्रकार 'दृग्-दीक्षा' है और जैसे कछुई (कच्छपी) अपने बच्चों का पालन केवल ध्यान द्वारा करती है, उसी प्रकार मानस----'वेध-दीक्षा' है। शक्ति की मात्रा के अनुसार शिष्य पर अनुग्रह करे। जिस पर शक्ति-पात नहीं होता, उसे सिद्धि नहीं मिलती।

सात प्रकार की मोक्ष-दायिनी दीक्षा

मोक्ष प्रदान करनेवाली दीक्षा सात प्रकार की कही गई है—१ क्रिया, २ वर्ण, ३ कला, ४ स्पर्श, ५ वाग्, ६ दृङ्, ७ मानस। इनके विशेष नाम क्रमशः ये हैं—१ समया, २ साधिका, ३ पुत्रिका, ४ वेधका, ५ पूर्णा, ६ चर्या, ७ निर्वाण।

कुण्ड, मण्डप और कलश आदि से युक्त 'क्रिया-दीक्षा' आठ प्रकार की है, जिसे बाह्य-पूजा-विधि से गुरु को करना चाहिये।

'वर्ण-दीक्षा' ४२, ५० या ६२ अक्षरों के न्यास के भेद से तीन प्रकार की है। इस दीक्षा में शिष्य के शरीर में वर्णों का न्यास कर प्रतिलोम से उन्हें लय कर शिष्य के चैतन्य को परमात्मा से युक्त कर पुनः उन वर्णों को उससे उत्पन्न कर शिष्य के शरीर में उनका न्यास करे और सृष्टि-क्रम से चैतन्य को प्रयुक्त करे। इस प्रकार शिष्य में देव-भाव उत्पन्न होकर वह परानन्दमय होता है। यह वर्ण-मयी दीक्षा पाशों को काटनेवाली (पाप-हारिणी) कही गई है।

'कला-दीक्षा' तीन प्रकार की है, जिसे विधिवत् करे। पैरों के तलवे से लेकर घुटनों तक 'निवृत्ति', घुटनों से नाभि तक 'प्रतिष्ठा', नाभि से कण्ठ तक 'विद्या,' कण्ठ से ललाट तक 'शान्ति', ललाट से शिर तक 'शान्त्यतीता'—ये पाँच कलाएँ स्थित हैं। यही 'कला-व्याप्ति' नाम से जाना जाता है। संहार-क्रम के योग से एक स्थान से दूसरे स्थान में उक्त कलाओं का विधिवत् संयोजन किया जाता है। इससे शिष्य को दिव्य-भाव प्राप्त होता है। अथवा ३८ या ५० कलाओं से तत्व-न्यास के क्रम से सृष्टि-संहार-योग से गुरु-मुख से जानकर शिष्य में संयोजन कर वेधन करे। इससे देव-भाव उत्पन्न होकर योगिनी-वीर के मिलन का आनन्द मिलता है। यह 'कला-दीक्षा' पशु-पाशों को नष्ट करनेवाली कही गई है।

श्री गुरुदेव अपने हाथ में शिव का ध्यान कर मूलाङ्ग-मालिनी का जप कर शिष्य के शरीर को छुयें। यह 'स्पर्श-दीक्षा' है।

अपने चित्त को तत्त्व में स्थित कर पर-तत्व से उत्प्रेरित होकर गुरु मन्त्रोपदेश करें। यह 'वाग्-दीक्षा' है।

दोनों आँखें बन्द कर पर-तत्व का ध्यान करते हुये प्रसन्न-बुद्धि से गुरुदेव शिष्य को अच्छी तरह देखें। यह 'दृग्-दीक्षा' है। गुरु के दर्शन, भाषण, स्पर्श मात्र से जब शिष्य को तुरन्त ज्ञान होता है, तो वह 'शाम्भवी दीक्षा' मानी जाती है।

'मनोदीक्षा' १ तीव्रा और २ तीव्र-तरा दो प्रकार की है। शिष्य के शरीर में १ भुवन, २ तत्व, ३ कला, ४ वर्ण, ५ पद, ६ मनु इन छः अध्वानों का स्मरण करते हुए क्रमशः १ जानु, २ नाभि, ३ हृदय, ४ कण्ठ, ५ तालु और ६ मूर्द्धा में गुरूपदिष्ट मार्ग से वेध करे। इससे शिष्य पापों से मुक्त होकर परानन्दमय होता है। यह मुक्ति-प्रदा 'तीव्र-दीक्षा' है और 'तीव्र-तरा दीक्षा' में गुरु के द्वारा स्मृति-मात्र से संवेधित होकर शिष्य पाप-मुक्त होकर बाह्य क्रियाओं से शून्य होकर पृथ्वी पर तुरन्त गिर पड़ता है।

दिव्य-भाव को प्राप्त कर वह सर्वज्ञ हो जाता है। बोध-काल में जो होता है, उसे वह स्वयं ही अनुभव करता है। प्रबुद्ध होने पर उस सुख का वर्णन करने में वह समर्थ नहीं हो पाता। इस प्रकार वेध-विद्ध शिष्य साक्षात् शिव होता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। यह संसार के बन्धन से छुड़ानेवाली 'तीव्र-तरा दीक्षा' है। यह साक्षात् शिव-भाव प्रदान करती है।

वेध की छः अवस्थाएँ

वेध की छः अवस्थायें कही गई हैं—१ आनन्द, २ कम्प, ३ उद्भव, ४ घूर्णा, ५ निद्रा और ६ मूर्च्छा। वेध-दीक्षा होने पर शिष्य में ये ६ गुण दिखाई पड़ते हैं। वेधित जहाँ कहीं भी रहे, मुक्त रहता है, इसमें सन्देह नहीं। वेध-दीक्षा करनेवाला गुरु संसार में दुर्लभ है, वैसा शिष्य भी दुर्लभ है, पुण्य-योग से ही मिलता है। यह दीक्षा जिस किसी को न दे, ऐसी आज्ञा है।

कौलिकी दीक्षा—सिद्धाभिषेक की विधि एवं महिमा

कुल-द्रव्यों से सविधि कुल-चक्र-पूजा कर शिष्य को उसे दिखाए, यह 'कौलिकी दीक्षा' है। पञ्च-गव्यामृत से युक्त कुल-द्रव्य को मुख में भरकर गुरुदेव गण्डूष (कुल्ला) द्वारा शिष्य का अभिषेक करें। तब सजीव मीन से युक्त सुरा या पञ्चामृत से पूर्ण शङ्ख या कलश के द्वारा बाह्य अभिषेक करें। 'मीन' लम्बिका (जिह्वा) है और 'कलश' मुख को कहा है। पञ्च-गव्यामृत से पूर्ण मुख द्वारा शिष्य का अभिषेक करे। यह सिद्धाभिषेक है और आचार्य के लिये भी वांच्छनीय है।

१-३ तीनों समय दन्त-धावन, ४-६ तीनों समय पुष्पांजलि, ७ शङ्खोदक से अभिषेक और ८ वेधन—इस प्रकार आठ क्रियायें हैं। फिर १ शङ्खाभिषेक, २ बोधन, ३ वेध, ४ पूर्णाभिषेक और ५ आचार्य—ये पाँच अवस्थायें कही गई हैं।

पूर्णाभिषिक्तों की प्रशंसा

केवल कुलाचार में तत्पर, गुरु-भक्त, दृढ़-व्रती जो पूर्णाभिषेक से पवित्र हैं, वे इसी जन्म में मुक्त होते हैं। जो दिवङ्गत हैं, वे पूर्णाभिषेक से पवित्र होकर उत्तम जन्म को प्राप्त कर शिव-रूप गुरु द्वारा शिव-सायुज्य-दायक पूर्णाभिषेक से शुद्ध होकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं, यह शङ्कर का वचन है। पूर्णाभिषेक से ही जो कौलिक मरता है, वह प्रलय होने तक पिशाच-योनि में रहता है।

दीक्षा के दो प्रकार और दीक्षा की महिमा

दीक्षा दो प्रकार की कही गई है—१ बाह्य, २ आभ्यन्तर। क्रिया-दीक्षा बाह्य है और वेध आभ्यन्तरी। अन्तः-शुद्धि और वहिः-शुद्धि—ये दो कही गई हैं। क्रिया-शुद्धि अन्तरा है और दीक्षा से बहिः-शुद्धि होती है। मोक्ष-दीप के समान दीक्षा द्वारा चाण्डाल भी मुक्त होता है। उक्त दोनों के विना कौलिक की मुक्ति नहीं होती।

न तो शरीर का संस्कार होता है, न कर्मों का। 'आत्मा' की दीक्षा कराए, जो अनादि कुल-कुण्डली है। ये दीक्षाएँ कर्म की समता में उत्तम आचार्य और शिष्य के अनुसन्धान से भिन्नार्थ की प्रतिपादका हैं। जैसे मन्त्र और औषधि द्वारा विष की शक्ति नष्ट की जाती है, वैसे ही दीक्षा द्वारा मन्त्रज्ञ पशु-पाश को क्षण भर में काट देता है। इस बन्धन से छूटने से परम संस्थान का ज्ञान होता है। दीक्षा ही मोक्ष देती है और दिव्य धाम तक पहुँचाती है। विधि-पूर्वक दीक्षा करने से लाखों छोटे पाप और कोटि बड़े पाप क्षण भर में भस्म हो जाते हैं। जिसके द्वारा पशुओं की आत्मा स्वतन्त्र होती है, वह 'दीक्षा' पशु-पाश से छुड़ानेवाली है। जिससे दीक्षित होने मात्र से विश्वास उत्पन्न होता है, वही 'दीक्षा' मोक्ष-दायिनी है। शेष तो जन-सेविका हैं। जिसके विना सैकड़ों उपासनाओं द्वारा भी सिद्धि नहीं मिलती, उस

'दीक्षा' का आश्रय मन्त्र-सिद्धि के लिये गुरुदेव से प्राप्त करे। रसेन्द्र (पारद) से विद्ध लौह जैसे सुवर्ण बन जाता है, वैसे ही दीक्षा से विद्ध आत्मा शिवत्व को प्राप्त करती है।

दीक्षा की अग्नि से जिसके कर्म दग्ध हो जाते हैं, वह माया के बन्धनों से मुक्त होकर ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त कर निर्वीज हो शिव हो जाता है। दीक्षा-संस्कार से सम्पन्न होने पर शूद्र की शूद्रता और विप्र की विप्रता नहीं रहती, जाति-भेद नहीं रहता। शिव-लिङ्ग को शिला समझने से जो पाप होता है, वही पाप दीक्षित को पूर्वावस्था का स्मरण करने से लगता है। जिस प्रकार लिङ्ग-रूप में प्रतिष्ठित होने पर काष्ठ, पत्थर, लौह, मिट्टी, रत्न की जाति नहीं रह जाती, उसी प्रकार सभी वर्ण के मनुष्य दीक्षित होकर शुद्ध ही कहे जाते हैं। ब्रह्म से लेकर भुवन तक सभी दीक्षित द्वारा पूजा पाकर सब प्रकार प्रसन्न होते हैं। दीक्षित व्यक्ति को तप, नियम, व्रत, तीर्थ-यात्रा करने और शरीर को कष्ट देने की आवश्यकता नहीं होती।

दीक्षा-हीन व्यक्ति जप-पूजादि जो क्रियाएँ करते हैं, वे पत्थर में बोये हुये बीज के समान फल नहीं देतीं। दीक्षा-विहीन को न सिद्धि मिलती है, न सद्-गति। अतः सब प्रयत्न करके गुरु से दीक्षित होना चाहिये। जो द्विज अन्त्यज के बाद दीक्षित होता है, वह कनिष्ठ होता है और अन्त्यज ज्येष्ठ—शास्त्र का यही निर्णय है। गुरु-शक्ति और गुरु-पुत्रों में, जो पहले दीक्षा पाये हुये हैं, वे गुरु के समान पूजनीय हैं। उनकी कभी अवमानना न करे।

यदि शिष्य केवल दीक्षित हुआ हो और गुरु का स्वर्गवास हो जाय, तो उनकी सन्तान द्वारा संस्कार पूर्ण कराये। सभी दर्शनों में ज्ञान रखनेवाले गुरु द्वारा जो विधि-पूर्वक दीक्षा लेता है, वही मुक्त होता है, अन्य नहीं। अधिवासन कर चक्र-पूजा के साथ दीक्षा द्वारा शिष्य का शोधन करे अन्यथा फल नहीं होता।

शूद्रादि जातियों और स्त्रियों की दीक्षा-विधि

शूद्र और वर्ण-सङ्कर व्यक्तियों की पूर्व-शुद्धि आवश्यक है। पादोदक आदि देकर उन्हें पापों से छुड़ाये। द्विज एक वर्ष में, क्षत्रिय दो वर्षों में, वैश्य तीन वर्षों में और शूद्र चार वर्षों में दीक्षा के योग्य होता है। विधवा की दीक्षा पुत्र की अनुमति से, कन्या की पिता की अनुमति से और विवाहिता की पति की अनुमति से दीक्षा करे। स्त्रियों को स्वतः दीक्षा लेने का अधिकार नहीं है। जैसे वेद के अध्ययन में शूद्र अधिकारी नहीं है, वैसे ही अदीक्षित साधना का अधिकारी नहीं होता। दीक्षा पाकर श्री गुरुदेव, गुरु-पत्नी, गुरु-पुत्र, शक्तियों और कौलिकों को यथाशक्ति सन्तुष्ट करे।

इस प्रकार गुरु-शिष्य की परीक्षा और दीक्षा-भेदादि के सम्बन्ध में मैंने तुम्हें कुछ बताया। अब हे देवि ! क्या सुनना चाहती हो ?

पन्द्रहवाँ उल्लासः पुरश्चरण-कथन

श्री देवी ने कहा—हे कुलेश ! मैं पुरश्चरण के लक्षण सुनना चाहती हूँ। स्थान, आहारादि के भेद मुझे बताइये।

जप की श्रेष्ठता

ईश्वर ने कहा---हे देवि ! सुनो, जो तुमने मुझसे पूछा है, उसे कहूँगा। उसके सुनने मात्र से मन्त्र का तत्त्व ज्ञात होता है। 'जप'-यज्ञ से बड़ा अन्य कोई यज्ञ इस संसार में नहीं है। इसलिये 'जप' के द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करे। सब धर्मों को छोड़कर बिना किसी प्रमाद के मन्त्र-राज का अभ्यास करे। प्रमाद अर्थात् विधि की उपेक्षा करने से हानि होती है और विधि से सिद्धि होती है। भोग और मोक्ष के सङ्कल्प से, कल्प और व्रत से 'जप' शुभदायक होता है। 'जप' और ध्यान-मय होने से ही योग होता है। अतः वैसा विधि-पूर्वक करे। नियमों के अतिक्रमण और ज्ञान-अज्ञान में किये गये कर्मों से उत्पन्न जन्म-जन्मान्तर के सभी दोष 'जप' से नष्ट हो जाते हैं। दुःख-मय संसार में यदि अपने कल्याण की इच्छा है, तो पञ्चाङ्ग-उपासना से मन्त्र-जप करे और सुख से रहे।

पुरश्चरण के पाँच अङ्ग

१ तीनों काल की नित्य-पूजा, २ जप, ३ तर्पण, ४ होम और ५ ब्राह्मण-भोजन—यह 'पुरश्चरण' कहा जाता है। जो-जो अङ्ग न हो सके, उसकी संख्या का दुगना जप करे। अथवा अशक्त होने पर भक्ति-पूर्वक अङ्ग-सिद्धि के लिए क्रमशः अङ्गों का द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-संख्यक जप करे। अन्यथा अङ्ग-हीनता के दोष से अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती। चतुर्विध अन्न के पदार्थों से, जो छः रसों से युक्त हों, विप्रों को भोजन कराकर सन्तुष्ट करे, तो सभी कर्म सफल होते हैं। इस पञ्चाङ्ग-उपासना से जो एक मन्त्र को सिद्ध कर लेता है, उसे सभी मन्त्र हे कुलेश्वरि ! तुम्हारी कृपा से सिद्ध हो जाते हैं। उपदेश के सामर्थ्य, श्रीगुरु की प्रसन्नता और मंत्र की प्रभाव-शक्ति से मंत्र-सिद्धि होती है। सिद्ध गुरु से प्राप्त मंत्र से अथवा पूर्व-जन्म में किए मंत्राभ्यास से शीघ्र सिद्धि मिलती है। परम्परा के क्रम से दीक्षा-पूर्वक न्याय-सहित जो मंत्र मिलता है, वह सिद्ध होता है, इसमें सन्देह नहीं।

भूत-लिपि से पुटित मन्त्र-जप

भूत-लिपि से मन्त्र को सम्पुटित कर एक मास तक जो क्रमशः एक सहस्र जप करता है, उसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मातृकाक्षरों से सम्पुटित मन्त्र को अनुलोम-विलोम से एक सहस्र जप करने से मन्त्र-सिद्धि होती है। मातृका के जप मात्र से कोटि मन्त्रों का जप हो जाता है क्योंकि सभी मन्त्र मातृका से ही उत्पन्न हुए हैं। अनेक कोटि मन्त्र चित्त को व्याकुल करनेवाले हैं। गुरु-कृपा से प्राप्त एक मन्त्र ही सभी सिद्धियों का देनेवाला है।

अविधि से प्राप्त मन्त्र हानि-कारक

अचानक सुने या देखे हुए मन्त्र, या छल से प्राप्त मन्त्र, या किसी पन्ने पर लिखे मन्त्र का जप करने से हानि होती है। पुस्तक में लिखे मन्त्रों को देखकर जो जपते हैं, उन्हें ब्रह्म-हत्या के समान दुःखदायी पाप लगता है।

पुरश्चरण के लिये प्रशस्त एवं निषिद्ध स्थान

पुण्य-क्षेत्र, नदी-तट, गुफा, पर्वत-शिखर, तीर्थ-स्थान, नदियों का सङ्गम, तपोवन, उद्यान, बिल्व-मूल, पर्वत-तट, देव-मन्दिर, समुद्र-तट और अपना घर—मन्त्र-साधकों के लिए ये स्थान प्रशस्त हैं। अथवा जहाँ चित्त प्रसन्न हो, वहाँ निवास करे। सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, गाय, विप्र और कुल-वृक्षों के समीप जप करना श्रेयस्कर है। घर में सौगुना, गोष्ठ में लाख गुना, देव-मन्दिर में करोड़ गुना और शिव के निकट जप करने का अनंत फल होता है। म्लेच्छ, दुष्ट, पशु, सर्पादि की शङ्का और भीति से रहित, एकान्त, पवित्र, अनिंदित, भक्ति-युक्त, स्वदेश, धार्मिक देश, अन्नादि से सम्पन्न, उपद्रव-हीन, रमणीय, तपोवन में निवास करे।

जिस मार्ग से राजा, मंत्री, राजकीय पुरुष और बहुत से लोग आते-जाते हों, उसके पास मंत्रज्ञ निवास न करे। जीर्ण देव-मंदिर में, दग्ध वृक्ष के नीचे, नदी-तालाब-कुएँ और भू-छिद्रों में वास न करे।

दीप-नाथ की पूजा आवश्यक

दीप-नाथ की पूजा किए विना जो जप-पूजादि करता है, उसका केवल परिश्रम ही होता है। उसके फल को दीपनाथ हर लेते हैं।

त्याज्य और ग्राह्य आसन

वांस, पत्थर, मिट्टी, लकड़ी, तृण और पत्तों से बने आसनों को बुद्धिमान त्याग दे। ये दरिद्रता, व्याधि और दुःख देते हैं।

तूल, कम्बल, वस्त्र या सिंह-व्याघ्र-मृग-चर्म का आसन बनाए, जो सौभाग्य और ज्ञान की वृद्धि करते हैं। पद्म, स्वस्तिक, वीरादि आसनों से बैठकर जपार्चन आदि करे। अन्यथा फल नहीं मिलता।

प्राणायाम-विधि और उसका फल

त्रिमात्रक 'प्रणव' (ॐ) को बुद्धि द्वारा बारह बार जपता हुआ अन्तःस्थ वायु को पिङ्गला से छोड़े--यह 'रेचक' है। सोलह वार 'तार' (ॐ) को जपता हुआ बाह्य मारुत (वायु) को इडा से भरे–यह 'पूरक' है। बारह बार 'तार' को जपता हुआ मध्य में वायु का 'कुम्भक' करे। वायु-बीज (यं) से देह का 'शोषण' करे। फिर पूर्व-वत् वायु का निकालकर भरे और कुम्भक करे। अग्नि-वीज (रं) से देह का 'दाहन' करे। पुनः पूर्ववत् वायु को निकालकर भरे और कुम्भक करे तथा शिव एवं कुण्डलिनी के योग से उत्पन्न अमृत-धारा से पैर से मस्तक तक देह का 'प्लावन' करे।

जप और ध्यान से रहित प्राणायाम 'अगर्भ' होता है। 'अगर्भ' की अपेक्षा 'सगर्भ' सौ गुना अधिक फल-दायक है।

तप, तीर्थ-यात्रा, यज्ञ, दान, व्रत आदि 'प्राणायाम' की १६ वीं कला के भी बरावर नहीं हैं। उक्त तीनों 'प्राणायाम' मानस, वाचिक और कायिक--सभी पापों को तुरन्त भस्म कर देते हैं। जैसे धौंकनी द्वारा फूंकी गई धातुओं का मैल जल जाता है, वैसे ही प्राण का संयम करने से इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं। प्राणायामों द्वारा विशुद्ध प्रातना वाला जो भी कार्य करता है, वह फल-दायक होता है, इसमें सन्देह नहीं।

न्यासादि-सहित मन्त्र का जप

आगमोक्त मार्ग से जो नित्य न्यास करता है, वह देव-भाव को पाकर मन्त्र-सिद्धि को प्राप्त करता है। न्यास, कवच और छन्द से युक्त मन्त्र का जो जप करता है, उसके सभी विघ्न उसी प्रकार दूर हो जाते हैं, जैसे सिंह को देखकर हाथी भाग खड़े होते हैं। न्यास-जाल को किये बिना जो मूर्ख मन्त्र का जप करता है, उसे सभी विघ्न वाधा करते है जैसे वाघ मृग के बच्चों को वाधित करता है।

अक्ष-माला के दो भेद और उनमें जप का फल

अक्ष-माला दो प्रकार की कही है–१ कल्पिता और २ अकल्पिता। कल्पिता 'मणियों' से बनती है और अकल्पिता 'मातृकाओं' से। 'अ' से 'क्ष' तक के वर्णों से निर्मित होने के कारण इसे 'अक्ष-माला' कहते हैं। अनुलोम और विलोम से मन्त्रज्ञ गणना करे। अंगुलि से गणना का फल एक गुना, रेखाएँ खींच कर गणना करने का फल दस गुना, मणियों से गणना करने का फल सौ हजार गुना और मालिनी से गणना करते का अनन्त फल कहा गया है। ३० मणियों की माला से धन, २७ मणियों की माला से पुष्टि, २४

मणियों की माला से मोक्ष और १५ मणियों की माला से अभिचार होता है। ५० मणियों की माला से सर्व-सिद्धि होती है।

जप में अंगुलि-नियम

अंगुष्ठ से मोक्ष, तर्जनी से शत्रु-नाश, मध्यमा से धन-प्राप्ति, अनामिका से शान्ति-कर्म, कनिष्ठा से स्तम्भन और अँगुलियों से आकर्षण होता है।

आदि में 'इतना जप करूँगा' इस प्रकार सङ्कल्प कर मन्त्रज्ञ स्थिर आसन से बैठकर जप करे और जल-सहित देवी को जप का फल समर्पित करे।

जप के तीन भेद

जप तीन प्रकार का कहा गया है—१ उच्च स्वर से अधम, २ उपांशु मध्यम और ३ मानस उत्तम। बहुत धीमे जप करने से व्याधि होती है और बहुत तेज करने से तप का नाश होता है। मोती के हार के समान अक्षर-से-अक्षर को जोड़ता हुआ जप करे।

मन में स्तोत्र का स्मरण करना और वाणी से मन्त्र का जप करना—ये दोनों निष्फल होते हैं, जैसे टूटे हुए बर्तन में जल नहीं ठहरता।

सूतक-द्वय से मुक्त मन्त्र ही सिद्धि-दायक

आदि में जात-सूतक और अन्त में मृत-सूतक होता है। इन दोनों सूतकों से युक्त मन्त्र सिद्ध नहीं होता। अतः इन दोनों से मन्त्र को सदा रहित कर मन्त्र का जप करे क्योंकि दोनों सूतकों से मुक्त मन्त्र ही सब सिद्धियों को देता है।

मन्त्रार्थ आदि के ज्ञान बिना जप निष्फल

मन्त्रार्थ, मन्त्र-चैतन्य और योनि-मुद्रा को जो नहीं जानता, वह सौ कोटि जप करे, तो भी उसे सिद्धि नहीं मिलती।

चैतन्य-रहित मन्त्र निष्फल

जिन मन्त्रों के बीज सुप्त हैं, वे फल नहीं देते। चैतन्य मन्त्र ही सर्व-सिद्धि-प्रद कहे गए हैं। चैतन्य-रहित मन्त्र केवल वर्ण कहे गये है। चैतन्य-रहित मन्त्र केवल वर्ण कहे गये हैं। वे लक्ष कोटि जप से भी फल नहीं देते। मन में एक बार उच्चारण करने से उनका जैसा प्रभाव पहले होता है, वैसा ही प्रभाव शत, सहस्र, लक्ष या कोटि जप करने पर भी होता है। किन्तु चैतन्य-युक्त मन्त्र का एक बार भी उच्चारण करने से हृदय में कम्पन, ग्रन्थि-भेद, सभी अङ्गों में वृद्धि, आनन्दाश्रु, पुलक, देहावेश, गद्-गद् वाणी आदि का अचानक ही अनुभव होता है। इस प्रकार के लक्षण दिखने पर समझे कि मन्त्र परम्परा से प्राप्त है।

मन्त्र के ६० दोष

मन्त्र के ६० दोषों को जाने बिना जो मन्त्र का जप करता है, उसे लक्ष-कोटि जप करने पर भी सिद्धि नहीं मिलती। ये दोष हैं—१ द्ध, २ कूटाक्षर, ३ मुग्ध, ४ वद्ध, ५ क्रुद्ध, ६ भेदित, ७ बाल, ८ कुमार, ९ युवक, १० प्रौढ़, ११ वृद्ध, १२ गर्वित, १३ स्तम्भित, १४ मूर्छित, १५ मत्त, १६ कीलित, १७ खण्डित, १८ शठ, १९ मन्द, २० पराङ्मुख, २१ छिन्न, २२ वधिर, २३ अन्ध, २४ अचेतन, २५ किङ्कर, २६ क्षुधित, २७ स्तब्ध, २८ स्थान-भ्रष्ट, २९ पीड़ित, ३० निःस्नेह, ३१ विकल, ३२ ध्वस्त, ३३ निर्जीव, ३४ खण्डितारिक, ३५ सुप्त, ३६ तिरस्कृत, ३७ नीच, ३८ मलिन, ३९ दुरासद, ४० निः-सत्व, ४१ निर्मित, ४२ दग्ध, ४३ चंपल, ४४ भयङ्कर, ४५ निस्त्रिंश, ४६ क्रूर, ४७ फलहीन, ४८

निकृन्तन, ४६ निर्वीर्य, ५० भ्रमित, ५१ शप्त, ५२ रुग्ण, ५३ कष्ट, ५४ अङ्ग-हीन, ५५ जड़, ५६ रिपु, ५७ उदासीन, ५८ लज्जित, ५९ मोहित, ६० अलस।

मन्त्र के दस संस्कार

मन्त्र-दोषों को दूर करनेवाले दस संस्कार ये हैं--- १ जनन, २ जीवन, ३ ताडन, ४ बोधन, ५ अभिषेक, ६ विमलीकरण, ७ आप्यायन, ८ तर्पण, ९ दीपन, १० गुप्ति। सान पर चढ़ाने से जैसे शस्त्र तेज धारवाले होते है, वैसे ही इन दस संस्कारों से मन्त्र स्फूर्ति को प्राप्त करते हैं।

पुरश्चरण-काल में भोजनादि का नियम

मन्त्र-साधकों को विहित शाक, फल, दूध आदि हविष्य का भोजन करना चाहिए। जिसके अन्न, पान आदि से शरीर पुष्ट होकर धर्म का सञ्चय करता है, उस अन्न-दाता को साधक के कर्म का आधा फल मिलता है, इसमें सन्देह नहीं। अतः पुरश्चरण-काल में और काम्य कर्मों में भी प्रयत्न करके पराए अन्न को न ग्रहण करे। कहा भी है कि 'दूसरे के अन्न से जिसकी जीभ जली हुई है; दान लेने से जिसके दोनों हाथ जले हुए हैं और पराई स्त्री का चिन्तन करने से जिसका मन जला हुआ है, उसे कार्य में सिद्धि कैसे मिल सकती है ?'

सिद्धादि चक्रों का विचार

सिद्धादि (अकथह), नक्षत्र, राशि, कुलाकुल चक्रों से मन्त्र के सम्बन्ध में विचार कर ले। मन्त्र चार प्रकार के हैं—१ सिद्ध, २ साध्य, ३ सुसिद्ध, ४ अरि। इनमें से प्रत्येक के चार भेद हैं। यथा—

सिद्ध—१ सिद्ध-सिद्ध, २ सिद्ध-साध्य, ३ सिद्ध-सुसिद्ध, ४ सिद्ध अरि।

साध्य—१ साध्य-सिद्ध, २ साध्य साध्य, ३ साध्य-सुसिद्ध, ४ साध्य अरि।

सुसिद्ध--१ सुसिद्ध-सिद्ध, २ सुसिद्ध-साध्य, ३ सुसिद्ध-सुसिद्ध, ४ सुसिद्ध-अरि।

अरि--१ अरि-सिद्ध, २ अरि-साध्य, ३ अरि-सुसिद्ध, ४ अरि-रिपु।

'सिद्ध-सिद्ध' मन्त्र जप द्वारा सिद्ध होता है। 'सिद्ध-साध्य' दूने जप से और 'सिद्ध-सुसिद्ध' आधे जप से सिद्ध होता है। 'सिद्धारि' मन्त्र का जप करने से बन्धु-बान्धव का नाश होता है।

'साध्य-सिद्ध' कठिनाई से सिद्ध होता है। 'साध्य-साध्य' मन्त्र का जप व्यर्थ होता है। 'साध्य-सुसिद्ध' भजन करने से सिद्ध होता है और 'साध्यारि' के जप से वंशजों का नाश होता है।

'सुसिद्ध सिद्ध' आधे जप से, 'सुसिद्ध-साध्य' यथोक्त जप से, 'सुसिद्ध-सुसिद्ध' ग्रहण मात्र से सिद्ध होता है। 'सुसिद्धारि' अपने वंश का नाशक होता है।

'अरि-सिद्ध' पुत्र का, 'अरि-साध्य' पत्नी का, 'अरि-सुसिद्ध' कुल का और 'अरि-अरि' अपनी आत्मा का नाश करता है।

इस प्रकार सिद्ध मन्त्र वान्धव, साध्य मन्त्र सेवक, सुसिद्ध मन्त्र पोषक और अरि मन्त्र घातक माने गये हैं।

वे मन्त्र, जिनमें सिद्धादि का विचार अनावश्यक

एकाक्षर-मन्त्र, कूट-मन्त्र, त्रिपुरा-मन्त्र, स्त्री द्वारा दिए गए मन्त्र और स्वप्न में प्राप्त मन्त्र के सम्बन्ध में सिद्धादि का विचार न करे। इसी प्रकार सिद्ध पुरुष के द्वारा उपदिष्ट, चारों आम्नायों से उत्पन्न और माला-मन्त्रों के सम्बन्ध में शोध न करे। नृसिह, सूर्य, वाराह, प्रासाद, प्रणव, सपिण्डाक्षर वाले मन्त्रों के सम्बन्ध में भी विचार न करे।

जप की सफलता में बाधक बातें

मन कहीं हो, शिव कहीं हो, शक्ति कहीं हो और प्राण कहीं और हो, तो लक्ष कोटि जप से भी

सिद्धि नहीं मिलती। विवाद के लिए विद्या पढ़े, दूसरे के लिए जप करे, ख्याति के लिए दान दे, तो सिद्धि कैसे मिले ? धन के लिए तीर्थ में जाय, दम्भ के लिए तप करे, स्वार्थ के लिए देव-पूजा करे, तो सिद्धि कैसे हो ?

अशुद्ध देह से न्यास, देव-पूजा, जप और होम जो मूर्ख करते हैं, उनका सारा कर्म निष्फल होता है। मल-मूत्र का त्याग किए बिना जो कर्म करता है, उसका जप-पूजनादि सभी अपवित्र होता है। मैले वस्त्र, केशादि और दुर्गन्धित मुख से युक्त जो जप करता है, उससे देवता रुष्ट होकर उसका शीघ्र ही नाश करते हैं।

आलस्य, जँभाई, नींद, भूख, प्यास, भय, नीचाङ्ग का स्पर्श और क्रोध--इस सबको जप-काल में दूर रखे। १ अधिक भोजन, २ प्रलाप, ३ वाद-विवाद, ४ नियमाग्रह और ५ पराई स्त्री या अन्य लोगों का साथ--इन छः बातों से मन्त्र सिद्ध नहीं होता। टोपी पहनकर, कंचुकी धारण कर, नग्न और मुक्त-केश होकर, लोगों से घिरकर, अपवित्र उत्तरीय धारण कर, अशुद्धावस्था में और चलते हुये जप न करे। जप-काल में जड़ता, दुःख, तिनका तोड़ना, विवाद या घमण्ड और अधोवायु का त्याग न करे।

जप की सफलता के लिये आवश्यक बातें

शान्त, पवित्र, अल्पाहारी, भूमि पर शयन करनेवाला, भक्ति-मान्, अनुशासन-पूर्ण, निर्द्वन्द्व, स्थिर-चित्त, मौनी और संयतात्मा होकर जप करे। साथ ही विश्वास, आस्तिकता, करुणा, श्रद्धा, नियम-पालन, दृढ़ निश्चय, सन्तोष, उत्सुकता और धर्म-निष्ठा आदि गुणों से युक्त होकर जप करे। सुगन्धि, पुष्प, आभूषण और वस्त्रों से अलंकृत साधक के हाथ में सिद्धि रहती है। अन्य को कोटि जप से भी सिद्धि नहीं मिलती।

इष्ट-देव में निष्ठा, उन्हीं में प्राण, उन्हीं में चित्त, उन्हीं के तत्व-चिन्तन में लगा हुआ जप करे। जप से थक कर पुनः ध्यान करे। ध्यान से थक कर पुनः जप करे। इस प्रकार जप-ध्यान से युक्त रहने-वाले साधक को शीघ्र ही सिद्धि मिलती है।

इस प्रकार मैंने पुरश्चरण के कुछ लक्षण संक्षेप में तुमसे कहे। अब हे कुलेशानि ! तुम क्या सुनना चाहती हो ?

सोलहवाँ उल्लास : काम्य-कर्म का विधान

श्री देवी ने कहा--हे दया-सागर कुलेश ! मैं काम्य-कर्म के विधान को सुनना चाहती हूँ। उसे बताइये।

ईश्वर ने कहा—हे देवि ! सुनो, जो तुमने पूछा है, उसे कहूँगा। उसके सुनने मात्र से श्रोता प्रयोग में निपुण होता है।

जप-होमादि का परिमाण

विशुद्ध हृदय से मन्त्र-साधक पूर्वोक्त नियमों से युक्त होकर श्रीप्रासाद-परा-मन्त्र का पाँच लाख जप करे। संस्कृत अग्नि में दशांश हवन करे। मधुर-त्रय से युक्त जल और अक्षत से दशांश तर्पण करे।

गन्ध, पुष्पाक्षत, धन, वस्त्र, भक्ष्य, भोज्यान्न-पानादि सुन्दर हृव्य द्रव्यों से यथा-शक्ति योगिनियों को सन्तुष्ट करे।

सिद्ध-मन्त्र वाले साधक को षट्-कर्म में सफलता

इस प्रकार न्यास, जप, ध्यान-पूर्वक होमार्चन और तर्पण करने से मन्त्र-सिद्ध होकर साधक साक्षात् परं-शिव-स्वरूप हो जाता है। तब वह अपने अभीष्ट प्रयोगों का साधन करे। मन्त्र-सिद्ध साधक के षट्-कर्म सिद्ध होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। असिद्ध के प्रयोग सिद्ध नहीं होते, अपितु उसे देवता का शाप मिलता है।

काम्य-प्रयोग-कर्त्ता को मोक्ष नहीं

काम्य-प्रयोग करनेवालों का मोक्ष नहीं होता। उन्हें अपने प्रयोगों में सिद्धि मिलती है, यही उनकी सफलता है। एक विधान के दो फल कहीं भी नहीं मिलते। हे देवेशि ! इसी से देवता का यजन निष्काम भाव से करना चाहिये।

प्रयोग के दोषों की शान्ति चक्र-पूजा से

होम, तर्पण, मन्त्रादि से न्यास-ध्यान द्वारा अपने और दूसरों के षट्-कर्मों को करे। प्रयोग के दोषों की शान्ति और अपनी रक्षा के लिये प्रयोग के अन्त में विधिपूर्वक चक्र-पूजा करे और न्यास-ध्यान-पूर्वक मन्त्र का एक लाख जप कर ले। नहीं तो, अभीष्ट फल नहीं मिलता, अपितु देवता का शाप मिलता है।

प्रयोग के पूर्व ज्ञातव्य बातें

तिथि, वार, नक्षत्र, योग, मास, ऋतु, पक्ष, दीपेश, कूर्म-चक्र को जानकर कर्म को सिद्ध करे। ऋषि, छन्द, बीज, शक्ति, कीलक, देवता, अङ्ग-न्यास, ध्यान और पूजन को जानकर मन्त्रों की साधना करे। पुत्र, बान्धव और पत्नी राशि-वर्ण की अनुकूलता, भूत-मैत्री तथा उदय-अन्त को जानकर साधना करें। मन्त्र और विद्या की अभिन्नता, उनके निद्रा और बोध-रूपों तथा स्त्री-पुं-नपुंसकादि लिङ्ग-भेद को जानकर कर्मों को सिद्ध करे। स्वर, वर्ण और पद, चैतन्य और सूतक तथा ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि को जानकर मन्त्र की साधना करे। पञ्च-शुद्धि, आसन, प्राणायाम, न्यास, अक्ष-माला, मन्त्र-दोष, मन्त्र-संस्कार और मुद्रा आदि को जानकर क्रिया करे। इसी प्रकार आसन, दिग्बन्ध, नाडी, तत्व-सङ्गति, देवता, का ., मुद्रादि को जानकर कर्म सिद्ध करे। १ साध्य, २ साधक, ३ कर्म, ४ लेखनी और ५ द्रव्य—इन पाँचों को तथा स्थान, यन्त्र और प्रमाण को जानकर कर्म-साधना करे। सृष्टि-भावना, वर्ण-स्वरूप, संस्कार-विधि, कुण्ड एवं उसके द्रव्यों को मात्रा को जानकर होम करे। अग्नि की प्रभा, धुएँ और वर्ण, ध्वनि, गन्ध, शिखा, आकृतियों और शुभ चेष्टादि को जानकर शुभ तथा अशुभ का निर्णय करे। मन्त्र-तन्त्र के अनुसंधान से देहावेशादि लक्षण और मन्त्रोच्चारण के भेद को जानकर साधना करे। मण्डल, कलश, द्रव्य, शुद्धि, गन्धाष्टक, दीक्षा, नाम-करण आदि को जानकर दीक्षा-कर्म करे। नित्य, नैमित्तिक, काम्य, नियम, नामों की भावना, पूजन-विधि और धारण-यन्त्रों आदि को जानकर साधना करे। पूजा-गृह में प्रवेश की विधि, कुल-पूजा के लक्षण व कुल-द्रव्यादि की शोधन-विधि जानकर पूजा करे। अन्तर्याग, बहिर्याग, घट और अर्घ्य-पात्र की स्थापना-विधि आदि तथा पञ्च-पुष्पाञ्जलि की विधि जानकर साधना करे। पात्र, आधार, अलि (मद्य), पिशित (मांस), कला, मुद्रा, अध्व-मेलन और वटुकादि वलि की विधि को जानकर कर्म करे। कुल-अकुल नामक यति, शक्ति-भेद, शुभ लक्षण, स्त्री के संस्कार व अर्चन की विधि

ग्रादि ग्रौर सम्भोग-काल को जानकर शक्ति ग्रहण करे। पान-भेद, उनके फल, उल्लास के प्रमाण, स्थिति, लक्षण ग्रौर तत्त्व-त्रय स्वीकार करने की विधि को जानकर कुल-सुधा का पान करे। चक्र में प्रवेश करने की विधि, प्रणाम करना, चक्र में स्थित रहना ग्रौर उससे बाहर जाना तथा योगिनी की योग-चेष्टाग्रों को जानकर साधक 'कौलिक' होता है। रति के उल्लास-काल, कुल-दीप के निवेदन ग्रौर शान्ति-स्तव ग्रादि के पाठ को विधि को जानकर 'कुल-देशिक' होता है। मिथुन के ग्रनुग्रह, अष्टाष्ट-पूजन, पुष्पिणी-कुमारी का ग्रर्चन ग्रौर विशेष तिथियों के पूजन को जानकर साधना करे। ग्राम्नाय-भेद, सङ्केत, पुष्प-सङ्कोच, गुरु-त्रय ग्रौर सम्प्रदाय को जानकर साधना करे। श्रौत विद्या, कुलाचार, मन्त्रों के भेद, पादुका और चरण-त्रितय को जानकर साधना करे। अपने साधन-क्रम से ग्रधिक, समान ग्रौर न्यून कौलिक ग्राराधन-क्रम को और सिद्ध मुद्राग्रों ग्रादि को जानकर कर्म करे। कुलाग्नि, प्रेत-संस्कार, ग्रन्त्येष्टि, दिग्बलि ग्रौर मोक्ष-दीप ग्रादि की विधि को जानकर साधना करे। ये सब कुछ विशेष बातें कही गई हैं, वैसे सभी मन्त्रों की विधि का क्रम सामान्य ही है।

मन्त्रों का लिङ्ग-भेद

मन्त्रों के पुरुष-देवता होते हैं ग्रौर विद्याग्रों की स्त्री-देवता होती हैं। 'हुं' ग्रौर 'फट्' जिन मन्त्रों के ग्रन्त में हैं, वे पुरुष-मन्त्र हैं, जिनमें प्राण दाईं ग्रोर चलता है। जिन मन्त्रों के अन्त में 'स्वाहा' है, वे स्त्री-देवतावाले हैं ग्रौर उनमें प्राण बाईं ग्रोर चलता है। 'नमः' जिन मंत्रों के ग्रन्त में है, वे नपुंसक मन्त्र हैं ग्रौर उनमें प्राण दोनों नाड़ियों में चलता है।

कामना-भेद से मंत्रादि की भिन्नता

शांति कर्म में सौम्य मन्त्रों का प्रयोग होता है, जिनके अक्षर ग्रमृत-तत्त्वात्मक होते हैं ग्रौर अन्त में 'स्वाहा' रहता है। क्रूर कर्मों में ग्राग्नेय मन्त्रों का प्रयोग होता है। पुष्टि-कर्म में 'फट्', वश्य-कर्म में 'वषट्', मारण-कर्म में 'हुं फट्', स्तम्भन-कर्म में 'नमः' ग्रौर शान्ति-पुष्टि-कर्मों में 'स्वाहा' का प्रयोग होता है।

होम ग्रौर तर्पण में 'स्वाहा', न्यास ग्रौर पूजन में 'नमः' का प्रयोग मन्त्र के अन्त में साधक को जप-काल में परिस्थिति के ग्रनुसार करना चाहिये।

शान्ति-कर्म में रजत ग्रौर ताम्र-पत्र, वश्य में भोज-पत्र, सभी कर्मों में स्वर्ण-पत्र ग्रौर क्रूर कर्मों में प्रेत-कर्पट विहित है।

शांति-कर्म में त्रि-गन्ध, वश्य में पञ्च-गन्ध, सभी कार्यों में ग्रष्ट-गन्ध, ग्रौर क्रूर कर्मों में अष्ट-विषों का प्रयोग करे।

शान्ति-कर्म में दूर्वा की, वश्य में मयूर-पुच्छ की, सभी कर्मों में स्वर्ण की ग्रौर क्रूर कर्मों में काग-पुच्छ की लेखनी का प्रयोग करे।

शांति-कर्म ग्रपने घर में, वश्यादि देवो-मन्दिर में, सभी कार्य देवालय में ग्रौर क्रूर कर्म श्मशान में करे।

इस प्रकार उक्त लक्षणों को गुरु-मुख से जानकर सभी कर्मों को उनका फल पाने के लिये विधि-पूर्वक करे।

निज रूप की भावना

मूलाधार में तरुण सूर्य के समान ग्राभावाले प्रासाद-बीज का ग्रौर शिर में ग्रयुत चन्द्रों के समान प्रभावाले परा-बीज का ध्यान करते हुये उनके परस्पर स्पर्श से उत्पन्न ग्रानन्द से पुलकित होते हुये मूला-

धार से ब्रह्म-रन्ध्र तक अबाध रूप से परामृत-रस के सिञ्चन द्वारा पैरों से मस्तक तक अपने को जो नित्य आप्लावित अनुभव करता है, वह अजर और अमर होता है। इस प्रकार ध्यान करते हुये जो सभी कर्मों की साधना करता है, उसे शीघ्र सिद्धि मिलती है, इसमें सन्देह नहीं।

सात्विक ध्यान और उसका फल

हे प्रिये! सब सिद्धियों के देनेवाले ध्यान के भेद बताऊँगा, जिससे पूजा और होमादि के बिना अभीष्ट की प्राप्ति होती है। किसी मनोहर स्थान में स्थिर-मन होकर साधक सुखासन पर बैठे। फिर गुरु-वन्दना-पूर्वक अपने मस्तक में स्थित पूर्ण चन्द्र के उज्ज्वल मण्डल का ध्यान करे। उस मण्डल के मध्य में मोती, स्फटिक, कर्पूर, कुन्द-पुष्प और चन्द्रमा के समान धवल तथा सोलह स्वरों से युक्त श्री प्रासाद-परा-बीज का चिन्तन करे। निश्चल अन्तरात्मा से उस चन्द्र-मण्डल से निकलती हुई सुधा से अपने शरीर को आप्लावित होता हुआ नित्य अनुभव करे। इससे सभी अरिष्ट नष्ट होकर शुभ श्री और पुष्टि का लाभ होता है।

तरुणोल्लास से युक्त होकर श्री प्रासाद-परा-मन्त्र का १००८ बार जप कर मण्डल-पूजा करे। इससे ग्रह, अपस्मार, वेताल-भूतोन्माद से होनेवाले भय दूर होकर आधि-व्याधि से रहित होकर साधक पुत्र-पौत्र से सम्पन्न होता हुआ सौ वर्ष तक जीवित रहता है। साथ ही सभी मनुष्यों द्वारा पूजित होता है। अश्रुत शास्त्र को वह समझ लेता है, निर्मल कविता रचने लगता है और साक्षात् चिन्मय हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

ज्वर, उन्मादादि रोगों में शिर में ध्यान करता हुआ जप करे। शूल, बात, व्रण, ग्रन्थि, मूत्र-कृच्छ्र आदि के होने पर उन-उन स्थानों में पूर्ववत् ध्यान करता हुआ जप करे। महा-रोग के उत्पन्न होने पर सभी अङ्गों में ध्यान करे। इससे तुरन्त सभी रोग शान्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

दसों इन्द्रियों में जो ध्यान करता है, उसको इन्द्रियाँ सुसंयत हो जाती हैं। जहाँ बीज का स्मरण किया जाता है, वहीं वैसा फल निश्चय ही होता है। जो सदा मूर्ध्नि में ध्यान करता है, वह अजर और अमर होता है। सब रोगों को नष्ट करनेवाले, ज्ञान और आरोग्यदायक इस ध्यान से श्रेष्ठ अन्य कुछ नहीं है, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं। सात्विक ध्यान का ऐसा ही फल कहा गया है। सभी शान्ति-कर्मों को इसी विधि से सम्पन्न करे। इस विधि से अतुल सौभाग्य होता है।

राजस ध्यान और उसका फल

बारह आधार-पद्मों में बारह स्वरों से संयुक्त बीज का ध्यान करने से साधक अजर-अमर होता है। छः आधारों में छः दीर्घ स्वरों से युक्त बीज का ध्यान करने से उन आधारों में स्थित देवियों द्वारा साधक पूजित होता है।

हृदय-कमल की कर्णिका के मध्य में सूर्य-मण्डल में स्थित परा-प्रासाद बीज का ध्यान इस प्रकार करे कि वह तरुण अरुण के समान प्रकाशमान है, जवा-बन्धूक-पद्मराग जैसी उसकी उज्ज्वल सिन्दूरी प्रभा है। पचीस स्पर्शाक्षरों से वेष्ठित उसके प्रभा-पटल की छाया से तीनों लोक रक्ताभ दिखाई देते हैं और निश्चल अन्तरात्मा से अपने को भी उसी से अभिभूत अनुभव करे। तरुणोल्लास के सहित परा-प्रासाद बीज का १००८ बार जप करे। इस विधान से देव, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, किन्नर, विद्याधर, मुनि, यक्ष, नाग, अप्सराएँ, स्त्रियाँ, सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि और अन्य सभी दुष्ट पशु भी साधक के वशीभूत हो जाते हैं, फिर साधारण मनुष्यों की क्या बात है। साधक महान् ऐश्वर्य और स्वर्गीय भोगादि को प्राप्त करता है। मस्तक में जिसका स्मरण करते हुये जप किया जाता है, वह शीघ्र ही वश में हो जाता

है। राजस ध्यान का ऐसा ही फल कहा है। सभी वश्य कर्मों को इसी विधि से सम्पन्न करें। यह सभी वश्य कर्मों को सिद्ध करनेवाला और सभी ऐश्वर्यों का फल देनेवाला है। इस ध्यान से श्रेष्ठ ध्यान अन्य नहीं है, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं।

तामस ध्यान और उसका फल

त्रिकोण, षट्कोण, अष्टार और भूपुर की रचना कर मध्य में साध्य-नाम से युक्त मूल-मन्त्र को लिखे। षट्-कोणों में षडङ्गों को लिखे। केशरों में आठ स्वरों को और पत्रों में वर्गों को लिखे। भूपुर के चार कोनों में मूल-मन्त्र को लिखे। पाँच रङ्गों की मिट्टी से यन्त्र को सुन्दर बनाये। इस प्रकार विधिवत् यन्त्र को लिखकर साधक यन्त्र के मध्य में और भूपुर के चारों कोनों में क्रमशः एक, तीन, छः, आठ, चार—कुल बाईस कलशों की स्थापना करे। अथवा यथा-सामर्थ्य १८, १०, ७, ४ या केवल एक ही कलश स्थापित करे। कलशों में विधिवत् अस्थि-रक्त-शिरा-तन्तु-चर्म-वस्त्रादि से युक्त और प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र से प्रतिष्ठित कलश-देवताओं और उनके अङ्ग-देवताओं एवं भैरवों के सहित माताओं का तथा विदिशाओं में गणेश, क्षेत्रपाल आदि का पूजन कर सभी पापों की शान्ति के लिये कलशस्थ जल से शिष्य का अभिषेक करे। इससे आयु-लक्ष्मी-कान्ति-सौभाग्य-ज्ञान-आरोग्य आदि की प्राप्ति होती है। इस प्रकार अभिषिक्त राजा को चारों दिशाओं में सागर तक व्याप्त पृथ्वी पर अधिकार मिलता है; अकिञ्चन को महान् ऐश्वर्य और वंध्या को सर्व-गुण-सम्पन्न पुत्र प्राप्त होता है। भूत-बाधा, अकाल-मृत्यु, रोगादि इसके प्रभाव से दूर होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। त्रि-लौह या भोज-पत्र में उत्तम यंत्र को बाहु में धारण करे, तो वह सब प्रकार से रक्षा करता है और जो-जो अभीष्ट होता है, उसकी प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं।

परा-प्रासाद-मन्त्र के जाननेवाले को खड्ग-वश्य, वयः-स्तम्भ, यक्षिणी-सिद्धि, अञ्जन-सिद्धि, पादुका-सिद्धि, अणिमादि अष्ट-सिद्धियाँ, महा-रस-रसायन, सञ्जीव-योग-गुटिका आदि सभी मुख्य सिद्धियाँ सुलभ होती हैं। षट्-कर्मों के प्रयोग कभी निष्फल नहीं होते। देवता का ध्यान करते हुये साधक पूर्ववत् पीले द्रव्यों और हरिद्रा आदि से समिधा एवं पत्र-फलों सहित हवन करे। इससे वाणी, श्रवण, गति, दृष्टि, सेना, नदी, ग्रह, शत्रु, विविध दुष्ट पशुओं का स्तम्भन होता है। ग्रहों के कोप, रोगों और दुष्टों का विनाश करनेवाला ध्यान इससे श्रेष्ठ अन्य नहीं है, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं। तामस ध्यान का ऐसा ही फल कहा है। दुष्टों के मारण-कर्मों को इसी विधान से करे।

गुरु-मुख से इन ध्यान-भेदों को जानकर षट्-कर्मों को करे, अन्य प्रकार से नहीं।

शान्ति, वश्य, आकर्षणादि कर्मों की हवन-विधि

खदिर (कत्था) श्वेत मन्दार (अर्क-मदार), पलाश (ढाक), उडुम्बर (गूलर), अश्वत्थ (पीपल), प्लक्ष (पाकड़), अपामार्ग, श्वेत कमल की समिधा तथा अन्य श्वेत शुभ द्रव्यों और फलों, भक्ष्य पदार्थों, खीर से एवं मधुर-त्रय (चीनी, शहद, घी) या सुरा से युक्त तिल-तण्डुल (चावल) द्वारा साधक हवन करे। बड़ा या छोटा जैसा कार्य हो, उसके अनुसार उक्त सभी वस्तुओं से या किसी एक से एक, तीन या पाँच हजार आहुतियाँ दे। कुण्ड में संस्कृत अग्नि में आवरणों सहित देवता का आवाहन-ध्यान जिस कर्म में जितना निर्दिष्ट हो, अयुत (दस हजार) या नियुत (एक लाख) या प्रयुत (दस लाख) आहुतियाँ विधिवत् तन्मय होकर प्रदान करे। इससे तत्क्षण ही सभी रोग, उन्माद, अपस्मार, यक्ष्मा-जन्य उत्पात और समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं। इससे सभी प्रकार की शान्ति, ज्ञान और विद्या का लाभ होता है।

कदम्ब, अशोक, वकुल (अपस्त), पुन्नाग, आम, मधूक (महुआ), चम्पक, पलाश, पाटल

(पाढर), श्री (बेल), कपित्थ (कैथा), मालती, मल्लिका (बेला) जाति, बन्धूक, अरुण कमल, कह्लार, अरुण मन्दार, यूथि, कुंद, जवा, नारिकेल, कदली, द्राक्षा, इक्षु, पृथुक, चंदन, अगुरु, कपूर, रोचना, कुंकुम, अन्य रक्त शुभ द्रव्य आदि समिधा, पत्र-पुष्प, फलादि द्वारा मन्त्रज्ञ पूर्ववत् विधिवत् हवन करे। इससे राजा, यौवन-गर्वित स्त्रियाँ, पुरुष, सिंह, व्याघ्र, दुष्ट पशु, हाथी, सिद्ध, देव, अप्सराएँ, यक्ष, गन्धर्व-स्त्रियाँ आदि सभी वशीभूत होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। वाजी-लवण के होम से स्त्रियों का निश्चय ही आकर्षण होता है। इस विधि से उत्तम सौभाग्य मिलता है।

परा-प्रासाद-मन्त्र का ज्ञाता जीवन्मुक्त

यहाँ अधिक कहने से क्या, इस मन्त्र-राज के द्वारा तीनों लोकों में साधकों को कुछ भी असाध्य नहीं है। एक ऊर्ध्वाम्नाय में पारङ्गत, परा-प्रासाद-मन्त्र का ज्ञाता और कुलार्णव के अर्थ-तत्व को जाननेवाला जीवन्मुक्त होता है। परा-प्रासाद-मन्त्र का ज्ञाता उत्तम तीर्थ में या अतीर्थ-स्थान में या जल के मध्य में रहता हुआ मुक्त ही होता है, इसमें सन्देह नहीं।

विद्वेषण, उच्चाटन, मारण की विधि

हे पार्वति ! दिशा, पीठ, क्षेत्र, मुद्रादि, वृक्ष, वल्ली, मठादि और ऊर्ध्वाम्नाय के भैरव तथा देवियों को पहले जान ले। फिर नीम, कारस्कर, उन्मत्त, कण्टकी, विप्र-दन्त, अस्थि, कण्टकादि वृक्षों और अशुभ साधनों द्वारा तथा कृष्ण-वर्ण वटकों एवं विभिन्न समिधाओं, पत्र-फलों को गृह-धूम, चिताङ्गार, त्रि-कटु के अञ्जन को उन्मत्त के रस में अच्छी तरह भिगोकर पीसे और साध्य के पैरों की मिट्टी को चित्ता-भस्म से युक्त कर साध्य की प्रतिमूर्ति बनाए। उसमें प्राण-प्रतिष्ठा कर उसे कुण्ड के नीचे यथा-विधि गाड़ दे। फिर मलीन मन से, उग्र-दृष्टि होकर, अमर्ष के साथ सात विष-तरुओं की लकड़ी से प्रज्वलित चिताग्नि में उक्त द्रव्यों से विधिवत् होम करे। इससे विद्वेषण, उच्चाटन, मारण होते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

शान्ति आदि कर्मों में श्वेतादि वर्णों की भावना

शान्ति-कर्म में सात्विक श्वेत-वर्ण का, वश्य-कर्म में राजस रक्त वर्ण का, क्रूर-कर्म में तामस कृष्ण-वर्ण का ध्यान करे। आत्म-रक्षा पहले कर ले, तब कर्म-साधन करे। मोह-वश जो ऐसा नहीं करता, वह देवता का पशु होता है। अतः हे देवि ! महा-षोढ़ा-न्यास, पूजा, बलि करके बुद्धिमान् कर्म करे।

मूलाधार-कमल के मध्य में अग्नि का ध्यान कर उसके मध्य में प्रलयाग्नि के समान उज्ज्वल एवं दस व्यापक अक्षरों से सम्पुटित परा-प्रासाद-बीज का ध्यान करे।

अनिष्ट करनेवालों के विनाश का उपाय

साधक स्वयं कालाग्नि के समान सब प्राणियों के लिये भयङ्कर होकर दक्षिण की ओर मुख कर अत्यन्त उग्र दृष्टि के साथ, यौवनोल्लास सहित, परा-प्रासाद-संज्ञक मन्त्र-मण्डल का १००८ जप करे। अनिष्टकारी प्राणियों, कलह-कष्ट-दायक और व्यर्थ ही द्वेष करनेवाले क्रूर लोगों, पूजा में विघ्न डालने-वाले भूत, उप-ग्रह, वेताल, पिशाच, यक्ष, राक्षस आदि सदा कष्ट-दायक दुष्ट जीवों को उक्त अग्नि के मध्य में गिर कर भस्म होते हुये चिन्तन करे। इससे क्षण भर में वे वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे पतङ्गे अग्नि में भस्म होते हैं। जिसके सिर में उक्त बीज का ध्यान किया जाता है, वह मृत्यु को प्राप्त करता है। उक्त ध्यान द्वारा हे देवेशि ! काल आदि का भी नाश होता है।

इस प्रकार मैंने काम्य-कर्म की कुछ विधि संक्षेप में तुमसे कही। अब हे कुलेशानि ! तुम क्या सुनना चाहती हो ?

सत्रहवाँ उल्लास : 'गुरु' आदि नामों की व्याख्या

श्री देवी ने कहा--हे कुलेश ! गुरु-नामादि की भावना को सुनना चाहती हूं। साथ ही कुल-पदार्थों का तत्व मुझे बताओ।

ईश्वर ने कहा--हे देवि ! सुनो, जो तुमने मुझसे पूछा है, उसे कहूंगा। उसके सुनने मात्र से 'कुल का ज्ञान' मिलता है।

श्रीगुरुदेव की प्रार्थना

हे नाथ, हे भगवन् ! आपको नमस्कार है। गुरु-रूप में शिव को नमस्कार है, जो परम ज्ञान की सिद्धि के लिए अनेक स्वरूपों को धारण करते हैं, जो नारायण-स्वरूप हैं, परमात्म-स्वरूप हैं। जो सभी प्रकार के अज्ञान-रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य-स्वरूप हैं, चैतन्यमय हैं। जो सर्वज्ञ, दया के मूर्तिमान स्वरूप कल्याणकारी हैं और इस लोक में तथा पर-लोक में भव्य भक्तों को शुभ भाव प्रदान करते हैं। ऐसे शिव-स्वरूप गुरुदेव को मैं आगे से, बगल से, पीछे से, ऊपर से, नीचे से—सभी ओर से नमस्कार करता हूँ। सत्-चित्-रूप से मैं सदा तुम्हारी सेवा में रहूँ।

'गुरु' आदि नामों की भावना

१ गुरु—'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' शब्द का तात्पर्य है उसके दूर करनेवाले से। अज्ञान-रूपी अन्धकार को दूर करने के कारण 'गुरु' नाम पड़ा।

गकार सिद्धि-दायक, रेफ पाप-दाहक कहा गया है। उकार को विष्णु कहा है। इस प्रकार 'गुरु' तीन शक्तियों से युक्त परम आत्मा है।

गकार ज्ञान-सम्पत्ति का बोधक है, रेफ उसे प्रकट करता है और उकार शिव से तादात्म्य कराता है। इस प्रकार 'गुरु' कहा गया है।

गुप्त आगम के अर्थ-तत्व का सन्धान करने से और उसका उद्बोधन करने से तथा रुद्रादि-देव-स्वरूप होने से 'गुरु' कहा गया है।

२ आचार्य—शिष्य को ही वह आचारवान् नहीं बनाता, अपितु स्वयं भी वैसा आचरण करता है और संसार में शास्त्रों का भावार्थ स्पष्ट करता है। यम-नियम आदि योग का उसे अभ्यास रहता है। इसी से वह 'आचार्य' कहा जाता है।

३ आराध्य—आत्म-भाव को प्रदान करने से और राग-द्वेष को दूर करने से तथा ध्यान के द्वारा जिसमें चित्त को एक-निष्ठ किया जाता है, उसे 'आराध्य' कहा जाता है।

४ देशिक—देवता का रूप धारण करने से और शिष्यों पर कृपा करने तथा करुणा-मय स्वभाव रखने से 'देशिक' नाम पड़ता है।

५ स्वामी—स्व (अपने) अन्तःकरण में शान्ति-पूर्वक पर-तत्व का चिन्तन करते रहने से और मिथ्या ज्ञान से रहित होने के कारण 'स्वामी' कहा जाता है।

६ महेश्वर—मन के दोषों से परे होने, हेतु-वाद से दूर रहने, श्वानादि प्राणियों में सम-दृष्टि होने और रमणीय होने से 'महेश्वर' कहा जाता है।

७ श्रीनाथ—श्रीमोक्ष-ज्ञान को देने से, नाद-ब्रह्म और आत्म-तत्व का बोध कराने से, और चित्त से अज्ञान को स्थगित (दूर) करने से 'श्रीनाथ' कहा जाता है।

८ देव—देश-काल के अनुकूल होने से, कुलागम में वर्तमान रहने से और संसार के जीवों को अपने वश में रखने से 'देव' कहा जाता है।

९ भट्टारक—भव (संसार)-बन्धन को शान्त करने से, टकार अर्थात् इन्दु (चन्द्र)-शेखर होने से और रक्षा करने से तथा कमनीय (सुन्दर) होने के कारण 'भट्टारक' कह जाता है।

१० प्रभु—आगम और वेदान्त के प्रगुप्त रहस्यार्थ की विवेचना करने और भुक्ति-मुक्ति को देने से 'प्रभु' कहा जाता है।

११ योगी—योनि-मुद्रा का अनुसन्धान करने से, मन्त्र-वैभव को प्रकट करने से और गीर्वाण (देव) समूह का पूज्य होने से 'योगी' कहा जाता है।

१२ संयमी—सङ्ग से होनेवाले दुःख का त्याग करने से, यत्र-कुत्र (जहाँ कहीं) आश्रम बनाकर रहने से, मिथ अर्थात् गुप्त रूप से अपनी आत्मा का अनुसन्धान करने से 'संयमी' कहा जाता है।

१३ तपस्वी—तत्व-रूप का मनन करने से, परिवाद (विवाद) से दूर रहने से और शुभ कार्यों को स्वीकार करने से 'तपस्वी' कहा जाता है।

१४ अवधूत—अक्षर (अविनाशी) होने से, वरेण्य (श्रेष्ठ) होने से, संसार के बन्धनों से धूत (मुक्त) रहने से और 'तत्वमसि' के अर्थ को सिद्ध करने से 'अवधूत' कहा जाता है।

१५ वीर—राग (आसक्ति), मद (अहङ्कार), क्लेश, क्रोध, मात्सर्य, मोह से वीत (रहित) होने से और रज-तम-गुणों से दूर रहने के कारण 'वीर' कहा जाता है।

१६ कौलिक—शक्ति और शिव से उद्भूत कुल या गोत्र प्रसिद्ध है, जिससे मोक्ष मिलता है—यह ज्ञान रखनेवाला 'कौलिक' कहलाता है।

'अकुल' को शिव कहते हैं और 'कुल' शक्ति को कहा गया है। 'कुल' और 'अकुल' के अनुसन्धान में निपुण व्यक्ति ही 'कौलिक' हैं।

१७ साधक—सार-वस्तु का संग्रह करने से, धर्म-कर्म में लगे रहने से और कारण (इन्द्रिय) समूह का नियमन करने से 'साधक' कहा जाता है।

१८ भक्त—मन, वाक् (वचन), काय (शरीर) और कर्म से परम भक्ति-पूर्वक भजन करनेवाला समस्त दुःखों से तर (पार हो) जाता है, इससे वह 'भक्त' कहलाता है।

१६ शिष्य—जो अपने शरीर, अर्थ (धन) और प्राणों को सद्गुरु को अर्पित कर योग की शिक्षा ग्रहण करता है, वह 'शिष्य' कहा जाता है।

२० योगिनी—योनि-मुद्रा का अनुसन्धान करने से, गिरिजा के चरणों की सेवा करने से और उपाधि-वैभवों से निर्लीन (रहित) होने से 'योगिनी' कहलाती है।

२१ शक्ति—शत-कोटि महा-दिव्य योगिनियों को प्रसन्न करने से और तीव्र स्फूर्ति प्रदान करने से 'शक्ति' कही जाती है।

२२ पादुका—पालन करने से, दुरितों (पापों) का नाश करने से और कामनाओं की पूर्ति करने से 'पादुका' कहलाती है।

२३ जप—सहस्रों पूर्व-जन्मों में किए हुए पापों का नाश करने से और परम देव-तत्व का प्रकाश करने से 'जप' कहा जाता है।

२४ स्तोत्र—स्तोक अर्थात् अल्प ही से मन को अति प्रसन्न करने से और स्तोतृ अर्थात् स्तुति (प्रशंसा) द्वारा पार होने से 'स्तोत्र' कहलाता है।

२५ ध्यान—सभी इन्द्रियों के समस्त दुःखों को मन द्वारा संयमित कर अपने अन्तस् (हृदय) में अभीष्ट देवता का चिन्तन करना ही 'ध्यान' कहा जाता है।

२६ चरण—चरित के रहस्य को प्रकाश करने से, रक्षा करने से और नर-नारी का स्वरूप होने से 'चरण' कहलाता है।

२७ वेद—समस्त शास्त्रार्थ को वेदित (सूचित) करने से, सर्व-धर्मार्थ का निरूपण करने से और सभी दर्शनों का प्रमाण-स्वरूप होने से 'वेद' कहा जाता है।

२८ पुराण—पुण्य-पापादि का कथन करने से, राक्षस आदि का निवारण करने से और नौ प्रकार की भक्ति आदि का वर्णन करने से 'पुराण' कहा जाता है।

२६ शास्त्र—वर्णाश्रम के लोगों का शासन करने से और सब पापों से त्राण (रक्षा) करने से 'शास्त्र' कहलाता है।

३० स्मृति—निमित्तों का स्मरण करने से, धर्म-अधर्म का निरूपण करने से और अज्ञान-तिमिर (अन्धकार) को दूर करने से 'स्मृति' कही जाती है।

३१ इतिहास—इष्ट-धर्म आदि का कथन करने से, तिमिर (अज्ञानान्धकार) को नष्ट करने से और सब दुःखों का हरण करने से 'इतिहास' कहा जाता है।

३२ आगम—आचार का वर्णन करने से, दिव्यगति को प्राप्त करने का विधान बताने से और महान् अर्थ-तत्त्व का कथन करने से 'आगम' कहलाता है।

३३ शाक्त--शाकिनी-गण की पूजा करने से, भव-सागर को तरने (पार करने) से और परा-आदि-शक्ति का सान्निध्य प्राप्त करने से 'शाक्त' कहा जाता है।

३४ कौल--कौमार्य आदि का निषेध करने से, लय (मृत्यु) व जन्म आदि का नाश करने से और अशेष कुल (शक्ति) से सम्बद्ध होने से 'कौल' कहलाता है।

३५ पारम्पर्य--पाशों को काटने से, परम तेज को रञ्जित (प्रकाशित) करने से और यतियों द्वारा चिन्ता किये जाने से 'पारम्पर्य' कहा जाता है।

३६ सम्प्रदाय—संसार का सार-भूत होने से, प्रकाश (ज्ञान) का आनन्द देने से और यश-सौभाग्य को देने से 'सम्प्रदाय' कहलाता है।

३७ आम्नाय--सब मार्गों का आदि होने से, मन के उल्लास को बढ़ाने से और यज्ञादि धर्म का वर्णन करने से 'आम्नाय' कहा जाता है।

३८ श्रौत--अनेक महा-मन्त्रों, यन्त्रों, तन्त्रों और दैवतों के श्रुत होने (सुनने) से और श्रुति (वेद) से अभिन्न होने से 'श्रौत' कहलाता है।

३६ आचार--आम्नाय-तत्त्व के अनुरूप होने से, चातुर्य (चतुर्वर्ग) के अर्थ का निरूपण करने से और राग-द्वेषादि को शान्त करने से 'आचार' कहा जाता है।

४० दीक्षा--दिव्य भाव देने से, पापों का क्षालन (नाश) करने से और भव-बन्धन से मुक्त करने से 'दीक्षा' कहलाती है।

४१ अभिषेक—अहं-भाव को दूर करने से, भयों को दूर करने से, सेचन (सिञ्चन) करने से और कम्पादि आनन्द को उत्पन्न करने से 'अभिषेक' कहलाता है।

४२ उपदेश—उल्वण (अति-प्रभावशाली) होने से, परम (श्रेष्ठ) होने से, देवता की प्रीति दिलाने से और शक्ति-पात करने से 'उपदेश' कहा जाता है।

४३ मन्त्र—देवता के अमित तेज के तत्व-रूप का मनन होने से और सभी प्रकार के भयों से त्राण (रक्षा) होने से 'मन्त्र' कहलाता है।

४४ देवता--भक्तों की देह में विराजमान होने से, वर-दान देने से और ताप-त्रय आदि को शान्त करने से 'देवता' कहा जाता है।

४५ न्यास—न्याय से उपार्जित धन का शरीर में उपयोग करने से और सब प्रकार की रक्षा करने से 'न्यास' कहलाता है।

४६ मुद्रा—देवताओं को मुदित (प्रसन्न) करती हैं और मन को द्रवित (भाव-पूर्ण) करती हैं। अतः 'मुद्रा' नाम से प्रसिद्ध हैं, उन्हें दिखाना चाहिये।

४७ अक्ष-माला—अनन्त फल देने से, समस्त-पापों को क्षपित (नष्ट) करने से, मातृकात्मक (मातृकाओं---वर्णों से बनी) होने से और लाभ-कारिणी होने से 'अक्ष-मालिका' कही जाती है।

४८ मण्डल—मङ्गल करने से, डाकिनी-योगिनी-गण का आश्रय होने से और ललित (सुन्दर) होने से 'मण्डल' कहलाता है।

४९ कलश—कमलासन-रूप होने से, लघु तत्त्वादि का नाश करने से और अपार पापों को शमित (शान्त) करने से 'कलश' कहा जाता है।

५० यन्त्र—यम, भूत आदि सभी भयों से निरन्तर त्राण करता है, अतः 'यन्त्र' कहलाता है।

५१ आसन—आत्म-सिद्धि देने से, सब रोगों को दूर करने से और नव सिद्धियाँ प्रदान करने से 'आसन' कहा जाता है।

५२ मद्य—माया-जाल आदि को शमन करने से, मोक्ष-मार्ग का निरूपण करने से और आठों प्रकार के दुःखों को दूर करने से 'मद्य' कहलाता है।

महा-दान का अर्थ-रूप होने से, याग-भूमि का एकमात्र साधन होने से और मेरे (शिव के) भाव को उत्पन्न करने से 'मद्य' कहा जाता है।

५३ सुरा—सुन्दर मन द्वारा सेवित होने से, सदा राज्य-दायिनी होने से और सुर (देव) रूप को प्रदान करने से 'सुरा' कहलाती है।

५४ अमृत—अमृतांशु-स्वरूप होने से, मृत्यु-भय को दूर करने से और तत्त्व का प्रकाश करने से 'अमृत' कहा जाता है।

५५ पात्र—संसार में पान करने का अङ्ग-भूत होने से, त्रि (तीन) और चार कलाओं का आश्रय करने से तथा पतितों का त्राण (उद्धार) करने से 'पात्र' कहलाता है।

५६ आधार—आशु (शीघ्र) शुद्ध रूप देने से, धातृ-देव (विधाता) को प्रिय होने से और आधेय का रक्षण करने से 'आधार' कहा जाता है।

५७ मांस—माङ्गल्य (शुभ फल) देने से, सम्विदानन्द प्रदान करने से और सब देवताओं को प्रिय होने से 'मांस' कहलाता है।

५८ पूजा—पूर्व-जन्म के पापों का शमन करने से, जन्म और मृत्यु का निवारण करने से और सभी प्रकार का फल देने से 'पूजा' कही जाती है।

५९ अर्चन—अभीष्ट फल देने से, चतुर्वर्ग के फलों का आश्रय होने से और सब देवताओं का नन्दन (आनन्द) करने से 'अर्चन' कहलाता है।

६० तर्पण—तत्त्वात्मक देवता को उसके परिवार सहित नवानन्द प्रदान करने से 'तर्पण' कहा जाता है ।

६१ गन्ध––गम्भीर पापों, दुर्भाग्य और क्लेश का नाश करने से और धर्म का ज्ञान देने से 'गन्ध' कहलाता है ।

६२ आमोद––आघ्राण (सुगन्धि) को देने से, मोक्ष-मार्ग को दिखाने से और दग्ध, दुःखादि का दमन करने से 'आमोद' कहा जाता है ।

६३ अक्षत––अन्न देने से, अशेष (समस्त) पापों को क्षपित (नष्ट) करने से और तादात्म्य करने से 'अक्षत' कहलाते हैं ।

६४ पुष्प––पुण्य की वृद्धि करने से, पापों के समूह का परिहार (क्षय) करने से और पुष्कल (अत्यधिक) अर्थ प्रदान करने से 'पुष्प' कहा जाता है ।

६५ धूप––बड़े-से-बड़े समस्त दोषों को धूत (नष्ट) करने से, गन्ध के प्रभाव से, पवित्र करने से और परमानन्द को उत्पन्न करने से 'धूप' कहलाता है ।

६६ दीप––दीर्घ अज्ञान के महान्धकार और अहङ्कार को दूर करने से तथा पर-तत्व का प्रकाश करने से 'दीप' कहा जाता है ।

६७ मोक्ष-दीप––मोहान्धकार को शान्त करने से, क्षयादि दुःखों को दूर करने से, दिव्य रूप प्रदान करने से और पर-तत्व का प्रकाश करने से 'मोक्ष-दीप' प्रसिद्ध है, जो मोक्ष-मार्ग का एक-मात्र साधन है ।

६८ नैवेद्य––छः रसों से युक्त चार प्रकार के द्रव्यों को निवेदित करने से तृप्ति होती है । अतः 'नैवेद्य' कहलाता है ।

६९ बलि––बहु प्रकार से विचरते हुये भूतों के समूह का निवारण करने से 'बलि' कही जाती है ।

७० तत्त्व-त्रय––तुम्हारी (देवी की) सेवा करने से तत्व-त्रय की शुद्धि होती है । तत्त्व का प्रकाश करने से 'तत्व-त्रय' कहलाता है ।

७१ चलुक (चरुक)––चतुर्वर्ग के फल को देने से, अज्ञान के बन्धन को लुण्ठित (नष्ट) करने से और कल्याणकारी धर्म का मूल होने से 'चलुक' कहा जाता है ।

७२ प्रसाद––प्रकाशानन्द को उत्पन्न करने से, सामरस्य (सम-रसता, ऐक्य-भाव) को देने से और पर-तत्व का दर्शन कराने से 'प्रसाद' कहलाता है ।

७३ पान––पाश को काटने से, नरक का निवारण करने से और पावन-पवित्र करने से 'पान' कहा जाता है ।

७४ उपास्तिं—कर्म, मन, वचन से सभी अवस्थाओं में निकट से सेवा करने से 'उपास्ति' कहलाती है ।

७५ पुरश्चरण—पञ्चाङ्ग उपासना द्वारा इष्ट-देवता की प्रीति देने से जो भक्त के 'पुरः' (आगे) 'चरति' (चलता) है, वह 'पुरश्चरण' कहा जाता है ।

७६ उपहार—आवाहन आदि १६, १२ तक के कर्मों का विधि-पूर्वक व्यवहार करना 'उपहार' कहलाता है ।

७७ मृद्वासन—१६ उपचारों से आवृत्ति-सहित पूजन कर अपने स्थान को भेजना 'मृद्वासन' कहा जाता है ।

७८ आवाहन—पूजा के लिये देवता का आह्वान करना (बुलाना) 'आवाहन' कहलाता है ।

७६ स्थापन—आसन पर बैठाना 'स्थापन' है ।

८० सन्निधापन—एक दूसरे को आमने-सामने स्थित करना 'सन्निधापन' कहलाता है ।

८१ सन्निरोधन—जहाँ कहीं के लिये न चलना 'सन्निरोधन' है ।

८२ सकलीकृति—देवता के शरीर में षडङ्गों का न्यास करना 'सकलीकृति' है ।

८३ अवगुण्ठन—आच्छादन करना (ढँकना) ही 'अवगुण्ठन' है ।

८४ अमृतीकरण—धेनु-मुद्रा को दिखाना 'अमृतीकरण' है ।

८५ परमीकरण—'क्षमस्व' कहकर अञ्जलि दिखाना 'परमीकरण' है ।

८६ स्वागत—देवता के सम्मुख कुशल-प्रश्न करना 'स्वागत' है ।

८७ पाद्य—श्यामाक, दूर्वा, अब्ज, विष्णुक्रान्ता से 'पाद्य' होता है ।

८८ आचमनीय—जाती, लवङ्ग, कक्कोल से 'आचमनीय' कहा है ।

८६ अर्घ्य—अखिल अघों (पापों) को शान्त करने से, धन-पुत्र को वृद्धि करने से और अनर्घ (पुण्य) फल देने से 'अर्घ्य' कहलाता है ।

६० अष्टाङ्ग-अर्घ्य—१ सिद्धार्थ (सरसों), २ अक्षत, ३ कुशाग्र, ४ तिल, ५ यव (जौ), ६ गन्ध (चन्दन), ७ फल और ८ पुष्प से 'अष्टाङ्गार्घ्य' कहा है ।

६१ मधुपर्क—१ मधु (शहद), २ आज्य (घी) और ३ दही—इन तीनों से 'मधुपर्क' बनता है ।

६२ स्नान—चन्दन, कस्तूरी, अगरु आदि से सुगन्धित जल द्वारा देह का प्रक्षालन करना 'स्नान' है ।

९३ वन्दन—अष्टाङ्ग प्रणाम करना 'वन्दन' है ।

९४ क्षेत्र—यह सारा चराचर संसार 'क्षेत्र' है ।

९५ क्षेत्रपाल—उक्त क्षेत्र का जो पालन करता है, वही 'क्षेत्रपाल' है ।

इस प्रकार 'गुरु' आदि नामों की भावना मैंने हे महेशानि ! संक्षेप में तुमसे कही । जो इसे जानता है, वह कौलिक है ।

रहस्य से भी अति रहस्यपूर्ण यह ऊर्ध्वाम्नाय संक्षेप में कहा गया है, विस्तार से नहीं। यह कुलार्णव शास्त्र सबका सार है । मेरे द्वारा आज इसे प्रकट किया गया । इसे यत्न करके गुप्त रखे ।

पशु (अधार्मिक) के घर में पुस्तक रखने आदि का निषेध

पुस्तक को पशु के घर में न छोड़े । न तो पशु के हाथ में इसे दे और न पशु के सामने इसे पढ़े । आसवोल्लास को पढ़े नहीं और पुस्तक को भूमि पर न रखे ।

पुस्तक की नित्य-पूजा

नित्य भक्ति से इसकी पूजा करे और गुरु-मुख से इसका ज्ञान प्राप्त करे । अयोग्य पुत्र या अयोग्य शिष्य (या अदीक्षित) को इसे कभी न दे । स्नेह, लोभ या भय से जो इसे बताता है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ।

हे देवि ! प्राज्ञ अर्थात् प्रकृष्ट-रूप से ज्ञान रखनेवाले को जो-जो बातें जाननी चाहिये, उनका कुछ वर्णन मैंने भुक्ति-मुक्ति-रूपी फल के इच्छुक साधकों के हित के लिये किया है ।

ऊर्ध्वाम्नाय-माहात्म्य के पाठ व श्रवण का फल

श्री चक्र के निकट जो ऊर्ध्वाम्नाय के माहात्म्य का भक्ति-पूर्वक पाठ करता है या उसे श्रवण करता है, वही 'कौलिक' है । व्रत, स्नान, तप, तीर्थ, यज्ञ, देवार्चन आदि से जो पुण्य-फल मिलता है, उसका कोटि गुना फल उक्त माहात्म्य से प्राप्त होता है, वह कौलिक तुम्हारे (देवी के) सान्निध्य में निवास करता है, इसमें सन्देह नहीं ।

उपयोगी प्रकाशन

अद्‌भुत दुर्गा सप्तशती १००)
सात सौ श्लोकों एवं १३ अंगोंवाली श्री दुर्गा सप्तशती

कमला-कल्पतरु, पुष्प-१, २ ८०)
भ० लक्ष्मी-विषयक निबन्ध एवं स्तोत्र-संग्रह।

काली-पूजा-पद्धति १००)
दुर्लभ हस्त-लिखित पाण्डु-लिपि के आधार पर।

काली-कल्पतरु ३००)

गायत्री-कल्पतरु ५०)

नवरात्र-कल्पतरु १००)
इस लेख-संग्रह से नवरात्र की विशेषताओं को जानकर वास्तविक लाभ उठाया जा सकता है।

नवग्रह-साधना (सचित्र) १००)

प्राण-तोषिणी तन्त्र (सर्ग, धर्म-काण्ड) ५०)

बगला-कल्पतरु १००)

मन्त्र-कल्पतरु, पुष्प-१, २ ७०)
मन्त्र-शास्त्र-विषयक उपयोगी निबन्ध-संग्रह।

मन्त्र-कोष ३००)
भगवान् गणेश, सूर्य, शिव, विष्णु एवं दश-महा-विद्या आदि के विभिन्न मन्त्रों का प्रामाणिक संग्रह।

मन्त्रात्मक-सप्तशती (सजिल्द) ५००)
सप्तशती के ७०० मन्त्रों के गुप्त विधान।

शिव-शक्ति-अङ्क ५०)
'चण्डी'-पुस्तक-माला की उपयोगी पुस्तक।

श्रीविद्या-सपर्या-वासना १००)

श्री विद्या-साधना (५ पुष्प) २००)

सार्थ सौन्दर्य-लहरी ८०)

सांख्यायन तन्त्र (हिन्दी सारांश सहित) १००)
भगवती बगला के साधकों के लिए उपयोगी तन्त्र

सार्थ चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती) २५०)

स्वर-विज्ञान ७५)

हवनात्मक सप्तशती १००)

श्रीचण्डी-धाम, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६ फोनः ०५३२-२५०२७८३, ०९४५०२२२७६७

वन्दे गुरोर्मण्डलम्

'जीव' और 'परमात्मा'

'देह'–देवालय है और 'जीव'–'सदा-शिव' है। 'जीव'–'शिव' है, 'शिव'–'जीव' है। पाशों में बँधा हुआ 'जीव' माना जाता है और पाशों से मुक्त 'सदा-शिव' कहलाता है।

जिस प्रकार भूसी से युक्त धान होता और भूसी के दूर हो जाने पर चावल कहलाता है, उसी प्रकार कर्मों से बँधा हुआ 'जीव' और कर्मों से छूटा हुआ 'सदा-शिव' है।

– 'हिन्दी कुलार्णव तन्त्र', पृष्ठ ४९

प्रकाशक : परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
श्रीचण्डी-धाम, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६